वर्ष : 4, अंक : 15 जुलाई-सितम्बर 2020

हिन्दुस्तानी भाषा भारती

(भारतीय भाषाओं के प्रचार-प्रसार और संवर्धन को समर्पित त्रैमासिक पत्रिका)

"हिंदी है हम"

विशेष :

'तमिल भाषा-साहित्य-संस्कृति: अतीत एवं वर्तमान'

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

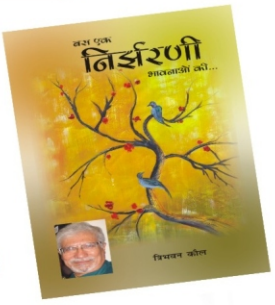

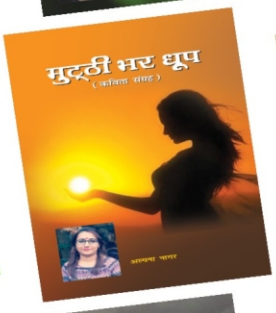

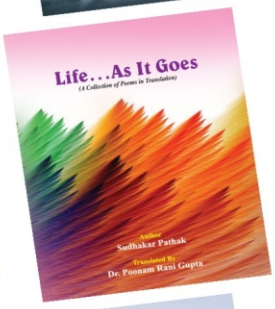

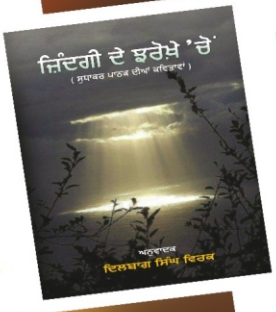

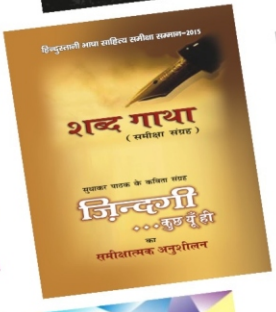

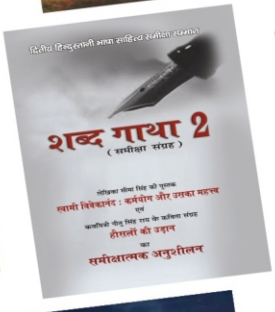

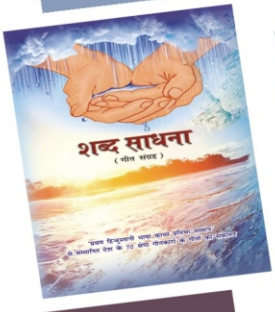

वर्ष : 4, अंक : 15

हिन्दुस्तानी भाषा भारती

मूल्य : 30 रुपये

(भारतीय भाषाओं के प्रचार-प्रसार और संवर्धन को समर्पित त्रैमासिक पत्रिका)

सम्पादक
सुधाकर बाबू पाठक

प्रबन्ध सम्पादक : **विजय कुमार शर्मा**
परामर्श सम्पादक : **सुरेखा शर्मा**
संयुक्त सम्पादक : **राजकुमार श्रेष्ठ**
सह सम्पादक : **सागर समीप**
उप सम्पादक : **सरोज शर्मा**
: **सुषमा भण्डारी**
: **डॉ. सोनिया अरोड़ा**
: **पुलकित खन्ना**
सम्पादकीय सलाहकार : **डॉ. वनीता शर्मा**
विधि सलाहकार : **अमरनाथ गिरि**
वित्तीय सलाहकार : **राम सिंह मेहता**

कार्यालय :
हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी
3675, राजा पार्क, रानी बाग, दिल्ली-110034
ई-मेल : info@hindustanibhashaakadami.com
hindustanibhashabharati@gmail.com
वेबसाइट : www.hindustanibhashaakadami.com
सम्पर्क सूत्र : 09873556781, 09968097816

■ पत्रिका में प्रकाशित लेखों में लेखकों के अपने विचार हैं । प्रकाशक का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है ।
■ सभी विवादों का निपटारा दिल्ली/नई दिल्ली की सीमा में आने वाली सक्षम अदालतों और फोरमों में ही किया जाएगा ।
■ सम्पादन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक और अव्यावसायिक है ।

प्रकाशक, सम्पादक व मुद्रक सुधाकर बाबू पाठक द्वारा स्वामी हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी ट्रस्ट, 3675, राजा पार्क, शकूर बस्ती, दिल्ली-110034 के लिए प्रकाशित और सन्नी प्रिन्टर्स, बी-234, नारायणा इन्डस्ट्रियल एरिया, फेस-1, नई दिल्ली-110028 से मुद्रित ।

विषय सूची

संपादकीय : कोरोना काल, वेबिनार और स्व-अनुशासन 04

साक्षात्कार : श्री राहुल देव, शिक्षाविद्, वरिष्ठ पत्रकार 06

साक्षात्कार : कृष्ण कुमार यादव, निदेशक, डाक सेवाएँ, लखनऊ मु.प. 13

रिपोर्ट : वेब संगोष्ठी-

■ भाषाओं के संरक्षण में शिक्षकों की भूमिका 17

■ बुंदेली भाषा, साहित्य, संस्कृति एवं लोक कलाएँ 19

■ भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन: दशा और दिशा 21

■ नई शिक्षा नीति : एक विमर्श 22

■ नई शिक्षा नीति : विद्यालय स्तर पर भारतीय भाषाओं की दिशा... 23

तमिल भाषा, साहित्य, संस्कृति और वर्तमान स्थिति - जमुना कृष्णराज 24

हिन्दी का उचित स्थान : आठवीं अनुसूची या राष्ट्रभाषा- रचना चतुर्वेदी 28

तमिल भाषा-साहित्य-संस्कृति: अतीत एवं वर्तमान - डॉ. आनंद पाटील 31

पूर्वोत्तर भारत का भाषाई परिदृश्य - हितेंद्र मिश्र 35

मात्रा पतन की स्वीकार्यता: कुछ सवाल-डॉ. राम गरीब पाण्डेय 'विकल' 38

हिन्दी चिरंजीवी भव - नीरज नीर 40

लोक साहित्य : सरोकार और संवेदनाएं - बृजेश प्रसाद 41

प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा में भारतीय भाषाओं.... - संतोष बंसल 44

महात्मा गाँधी का राष्ट्रभाषा-दर्शन - सुजाता भट्टाचार्या 47

भाषा में उलझता बालमन और युवा-वर्ग - गरिमा संजय 49

सम्पादकीय

कोरोना काल, वेबिनार और स्व-अनुशासन

सुधाकर पाठक
सम्पादक एवं अध्यक्ष,
हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी

विगत चार-पाँच माह से भारतीय समाज में 'वेबिनार' शब्द खूब प्रचलित हो रहा है। जितनी तेजी से इसकी लोकप्रियता बढ़ रही है उसे देखते हुए यह तो तय है कि आने वाले समय में यह हमारे सामाजिक, सांस्कृतिक, वैचारिक, शैक्षणिक, राजनैतिक जीवन को बहुत प्रमुखता से प्रभावित करने वाला है । आज विभिन्न सामाजिक संजाल, ब्लॉग, ऑनलाइन पत्रिकाओं आदि डिजिटल माध्यमों में लोग 'वेबिनार' शब्द को पढ़ते-समझते आ रहे हैं। इससे पहले कभी यह शब्द इस रूप में हमारे दैनिक जीवन के आम प्रयोग में नहीं था, इसलिए इस नये शब्द को लेकर कौतुहल होना स्वाभाविक है । वास्तव में 'वेबिनार' है क्या? शाब्दिक अर्थ में कहें तो 'वेबिनार' वेब और सेमिनार दो शब्दों को जोड़कर बना है। वेबिनार ठीक सेमिनार की तरह ही होता है। विभिन्न वेब एप्लिकेशन और इंटरनेट के माध्यम से किये जाने वाले ऑनलाइन सेमिनार को वेबिनार कहा जाता है। वेबिनार एक ऑनलाइन सेमिनार है जो विडियो कॉन्फ्रेंसिंग सॉफ्टवेर का उपयोग करके एक प्रस्तुति को दुनिया में कहीं से भी वास्तविक समय की बातचीत में बदल देता है । सेमिनार एक ऑफलाइन माध्यम है, जहाँ एक सभागार में मंच, माइक, पोडियम, बैनर, व्यवस्थित कुर्सियाँ आदि की व्यवस्था होती है। सामान्यत: उस मंच पर एक बैनर लगा होता है जिसमें होने वाले सेमिनार का विवरण लिखा होता है । वेबिनार में इन सब चीजों की व्यवस्था नहीं होती है। वेबिनार में आयोजक, वक्ता एवं प्रतिभागी अपने-अपने मोबाइल, कम्प्युटर या लैपटॉप के माध्यम से अपने घर, कार्यालय, पुस्तकालय या जहाँ कहीं भी बैठने की समुचित और सुविधाजनक व्यवस्था होती है, वहाँ से वेब, सॉफ्टवेयर और इंटरनेट के माध्यम से आयोजक द्वारा पूर्व निर्धारित आई.डी. और पासवर्ड से इन ऑनलाइन सेमिनारों में सम्मिलित होते हैं। आज की परिस्थिति में वेबिनार हमारे जीवन का एक अभिन्न हिस्सा बनता जा रहा है। जिस तरह से आज तकनीकी क्षेत्र में नए-नए प्रयोग हो रहे हैं और वे हमारे दैनिक जीवन को प्रभावित कर रहे हैं, उसके आधार पर कहा जा सकता है कि हमारे जीवन में ये नई तकनीकें आने वाले समय में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका में होंगीं ।

कोरोना महामारी के चलते एक लम्बे समय से आम नागरिक घुटन भरे वातावरण में जीने को विवश है । आगे क्या स्थिति होगी अथवा आने वाले समय में लोगों का जीवन यापन कैसे चलेगा? देश की अर्थव्यवस्था का हाल क्या होगा? सामाजिक एवं राजनीतिक ढाँचा कैसा होगा? न्याय प्रणाली की अवधारणा क्या होगी तथा इसे कैसे व्यवस्थित किया जाएगा? शिक्षा एवं प्रशासन को कैसे सुचारू रखा जाएगा? आदि प्रश्नों के उधेड़बुन में समाज उलझा हुआ है। चारों ओर सब कुछ ठप्प होने से नया कुछ उत्पादन ही नहीं हो पा रहा है। नये चलचित्रों का निर्माण, नई पुस्तकों का प्रकाशन, नये शैक्षिक सत्र का आरंभ आदि सब लगभग रुका हुआ है । अगर नया साहित्य कुछ लिखा भी जा रहा है तो उसका प्रकाशन नहीं हो पा रहा है। नये विचार, नई सोच तथा रचनात्मक एवं सृजनात्मक कार्य रुक-से गए हैं। लम्बे समय तक अपने घरों की परिधि तक सीमित होकर खुद को व्यस्त रखना लोगों के वश में नहीं है, इससे उनमें नकारात्मक भाव जन्म ले रहे हैं। अभिव्यक्ति के प्रचलित माध्यम बंद होने से लोग उकता गए है, ऊब चुके हैं। शुरुआत में कुछ लोगों ने इस अवधि में अपने कुछ पुराने अधूरे काम पूरे किये। किसी ने लेखन में, गायन में, चित्रकला में, पेंटिंग में, सामाजिक सेवाओं तथा अन्य रचनात्मक कार्यों में कुछ समय के लिए खुद को व्यस्त रखा लेकिन इसके बाद आगे क्या-क्या करें? जहाँ नैराश्य से भरी इस उबाऊ तालाबंदी ने लोगों की मन:स्थिति और मनोवैज्ञानिक पक्ष को कुंठित किया वहीं वेबिनार के बढ़ते प्रचलन ने समाज के बौद्धिक वर्ग, शैक्षिक संगठनों, साहित्यकारों, पत्रकारों, बुद्धिजीवियों, पाठकों, प्रकाशन विभागों, मीडिया कर्मियों, स्वास्थ्य कर्मियों, विचारकों, राजनीतिज्ञों, शिक्षाविदों, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक संगठनों तथा समाज सुधारकों को समकालीन परिस्थितियों पर, देश की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं विभिन्न राष्ट्रीय महत्त्व के मुद्दों पर अपने मत-अभिमत, विचार एवं अभिव्यक्ति संप्रेषित करने का माध्यम उपलब्ध कराया है। इसने भारतीय परिप्रेक्ष्य में शैक्षिक, साहित्यिक, सामाजिक गतिविधियों में एक नयी वैकल्पिक परंपरा की शुरुआत की है।

वेबिनार के लिए हाल में प्रचलित सॉफ्टवेयर प्रदत्त सेवाओं में मुख्य रूप से गूगल मीट, जूम एप, फेसबुक लाइव, यू-ट्यूब लाइव, स्काइप लाइव, गो टू वेबिनार, एनी मीटिंग आदि का उपयोग किया जाता है। अधोगति की ओर जाती हमारी वैचारिक, बौद्धिक, सामाजिक चेतना को वेबिनार ने एक नया मार्ग दिया है। इस तालाबंदी में समाज और राष्ट्र को आपस में जोड़े रखने तथा तकनीक के सहारे नयी कल्पनाओं को पुनर्जागृत करने के लिए वेबिनार का कोई अन्य विकल्प नहीं दिखता। आज जिन हालातों से देश गुजर रहा है, उसे देखते हुए वेबिनार की आवश्यकता और भी मजबूत हो जाती है। यहाँ तक की सरकार भी प्रशासनिक आदेशों, दिशा-निर्देशों, उच्चाधिकारियों से सम्पर्क स्थापित करने के लिए इनका उपयोग कर रही है।

आज के समय की मांग के अनुरूप अब वेबिनार हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग बनता जा रहा है। विचारों के आदान-प्रदान की बात हो या किसी मुद्दे पर अपने तर्क को प्रस्तुत करना हो, आज भारतीय समाज वेबिनार पर निर्भर होता जा रहा है। किन्तु यहाँ एक बात ध्यान रखने की है कि माध्यम भले कोई भी हो, व्यक्ति को अपना आदर्श व्यवहार, शिष्टाचार, संस्कार एवं स्व-अनुशासन को दरकिनार कभी नहीं करना चाहिए। सामान्यतय: वेबिनार में इन चीजों का अभाव अखरता है, खासकर गैर-सरकारी आयोजनों में। यहाँ प्रतिभागियों को अपने व्यवहार में स्वयं एक अनुशासन बनाये रखने की जरूरत है।

वेबिनार को लेकर आम धारणा यह बनी हुई है कि कहीं पर भी बैठकर, कहीं से भी इसमें आसानी से जुड़ा जा सकता है और यह सच भी है । लेकिन इसका मतलब यह बिलकुल नहीं है कि प्रतिभागी बिस्तर, किचन, डाइनिंग टेबल, व्यायाम कक्ष, छत आदि जगहों में जैसे मर्जी बैठे-खड़े, अन्य गैर जरूरी कार्य करते हुए इन आयोजनों में सम्मिलित हों। जिस तरह से हम विभिन्न संगोष्ठियों, सेमिनारों एवं परिचर्चाओं में शालीनता से उपस्थित होते रहे हैं, ठीक उसी तरह वेबिनार में भी प्रतिभागियों को भद्र, सभ्य एवं अनुशासित व्यवहार की अपेक्षा रहती है। जो गरिमा एवं गंभीरता सेमिनार में होती है वही वेबिनार पर भी लागू होती है। ऐसे आयोजनों के समय भले ही हम अपने घरों में हों, लैपटॉप या कंप्यूटर के सामने बैठे हों, किन्तु अपनी पोशाक, उठने-बैठने का ढंग, देखने-सुनने-बोलने के हाव-भाव आदि में भद्रता एवं शालीनता दिखनी चाहिये। हम जिस वेबिनार का हिस्सा होते हैं वहाँ उपस्थित वक्ता, आयोजक तथा अन्य प्रतिभागी आपके पहनावे, बैठने के ढंग, आपकी शारीरिक भाषा (बॉडी लैंग्वेज) आदि के द्वारा आपके चरित्र एवं व्यक्तित्व का भी मूल्यांकन कर रहे होते हैं। यदि हम यह मान लेते हैं कि ऑनलाइन में इतना तो चलता है या इससे कुछ फर्क नहीं पड़ने वाला तो हम बहुत बड़ी चूक कर रहे हैं।

हमारे व्यक्तित्व निर्माण में तथा भावी योजनाओं के सम्बंध में इसके हमें नकारात्मक असर भुगतने पड़ सकते हैं। वेबिनार हमें कई सुविधाएँ उपलब्ध कराता है, जैसे हम जब चाहें अपने वीडियो या ऑडियो को बंद कर सकते हैं, स्वयं को बड़ी स्क्रीन के माध्यम से केंद्र में लाकर अपना पक्ष रख सकते हैं, किन्तु यहाँ भी हमें स्व-अनुशासन का पालन करना चाहिए। जब वक्ता या विशेषज्ञ बोल रहें हों तो अपने ऑडियो को बंद कर देना चाहिए और वीडियो को खोल देना चाहिए। कई वेबिनारों में यह देखने को मिलता है कि जब वक्ता या विषय विशेषज्ञ बोल रहे होते हैं तो प्रतिभागियों की ओर से बोलने या घर के अन्य सदस्यों से बातचीत की आवाजें आती रहतीं हैं। इसी तरह कई बार वे अपने वीडियो विकल्प को भी बंद कर देते हैं जिससे वक्ता को यह नहीं मालूम होता कि उसके लैपटॉप या कंप्यूटर के स्क्रीन पर जो 60 से 100 प्रतिभागियों की उपस्थिति दिख रही है, असल में वे उसकी बात को सुन भी रहे हैं कि नहीं। उपस्थित प्रतिभागी अपनी-अपनी जगहों पर बैठें भी हैं या उठकर अन्य कामों में लग गए हैं। एक वक्ता या विशेषज्ञ के लिए इसका बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक असर होता है। अत: हम जब भी किसी वेबिनार में सम्मिलित हों तो हमें इन छोटी-छोटी लेकिन महत्वपूर्ण बातों का अवश्य ध्यान रखना चाहिए। विभिन्न सॉफ्टवेयर या वेब एप्लीकेशन हमें तकनीकी ज्ञान तो दे सकतीं है किन्तु स्व-अनुशासन का पालन करना हमारी अपनी नैतिक जिम्मेदारी है। आने वाला समय वेबिनार एवं अन्य तकनीकों के सहारे ही चलेगा, इसलिए ऐसे में हमें सामाजिक एवं तकनीकी अनुशासनों पर भी ध्यान देना ही होगा। हमारा व्यवहार ही हमारे व्यक्तित्व का दर्पण है, इसलिए इन तकनीकों के प्रयोग में हमें हमेशा ध्यान रखना होगा कि एक 'तीसरी आँख' भी है जो हमेशा हम पर नजर बनाये हुए है। हमें इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि हमारे इस व्यवहार का संज्ञान न केवल इस आयोजन में सम्मलित लोगों द्वारा लिया जा रहा है बल्कि इसकी रिकॉर्डिंग सोशल मीडिया व अन्य माध्यमों से समाज के बड़े वर्ग के पास बाद में भी न केवल पहुंचेगी बल्कि सुरक्षित भी रहेगी । इस रिकॉर्डिंग से समय-समय पर आपके व्यक्तिव का मूल्यांकन भी होगा और यह सुरक्षित रिकॉर्डिंग न केवल हमारे अपने देश में बल्कि विश्व में कभी भी, कहीं भी देखी-सुनी जा सकेगी ।

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी

(भारतीय भाषाओं के प्रचार-प्रसार और संवर्धन को समर्पित संस्था)

दिल्ली प्रदेश एवं गुरुग्राम क्षेत्र के विद्यालयों में सत्र 2019-20 में 10वीं कक्षा की बोर्ड परीक्षा में भारतीय भाषाओं में 90 प्रतिशत या उससे अधिक अंक प्राप्त करने वाले मेधावी छात्रों और उनके शिक्षकों के लिए सम्मान योजना

(हिन्दी, बंगाली, पंजाबी, संस्कृत, उर्दू, गुजराती, मराठी, तमिल, उड़िया, कन्नड़, मलयालम आदि)

भाषा रत्न * भाषा दूत * भाषा प्रहरी
भाषा गौरव शिक्षक सम्मान - 2020

हेतु प्रविष्टियाँ आमंत्रित हैं ।

अंतिम तिथि : 30 सितंबर, 2020

नियम

1. इस योजना में केवल वही विद्यार्थी भाग ले सकते हैं जिन्होंने 10 वीं कक्षा की बोर्ड परीक्षा वर्ष 2019-20 में किसी एक या एक से अधिक भारतीय भाषाओं (हिन्दी, बंगाली, पंजाबी, संस्कृत, उर्दू, गुजराती, मराठी, तमिल, उड़िया, कन्नड़ आदि) में 90 प्रतिशत या उससे अधिक अंकों से उत्तीर्ण की हो।
2. विद्यालयों को अपने पात्र विद्यार्थियों के नाम, विषय और प्राप्तांक सूचीबद्ध करके भेजने होंगे। (इस वर्ष विद्यार्थियों की अंक तालिका, फोन नंबर, डाक पता आदि भेजने की आवश्यकता नहीं है।)
3. यह विवरण सूची विद्यालय के प्राचार्य/प्राचार्या द्वारा सत्यापित होनी चाहिए।
4. विद्यालय के लेटर हेड पर पात्र विद्यार्थियों के भाषा शिक्षकों के नाम, फोन नंबर व ईमेल के विवरण के साथ पात्र छात्रों की समस्त विवरण लेटर हेड पर भेजा जा सकता है, जिसे प्राचार्य द्वारा सत्यापित किया जाए।
5. शत प्रतिशत (100) अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को **'भाषा रत्न'**, 90 प्रतिशत से अधिक अंक प्राप्त करने वाले चयनित विद्यार्थियों को **'भाषा दूत'** एवं सर्वाधिक प्रविष्टियाँ भेजने वाले विद्यालय को **'भाषा प्रहरी'** सम्मान से सम्मानित किया जाएगा।
6. भारतीय भाषा पढ़ाने वाले शिक्षकों को **'भाषा गौरव शिक्षक सम्मान'** से सम्मानित किया जाएगा।
7. केवल विद्यालयों द्वारा नियमानुसार भेजा गया विवरण ही मान्य होगा। छात्रों और शिक्षकों की ओर से व्यक्तिगत प्रविष्टियाँ स्वीकार नहीं की जाएंगी।
8. हिन्दी में भेजी गई सूची व पत्र ही स्वीकार किए जाएंगे।
9. शत प्रतिशत (100) अंक प्राप्त करने वाले छात्रों की एक पासपोर्ट आकार की फोटो भी संलग्न करें जिसके पीछे उनका नाम व विषय लिखा हो।

पंजीकृत कार्यालय : 3675, राजा पार्क, रानी बाग, दिल्ली - 110034

दूरभाष : 09873556781, 09968097816

ईमेल : info@hindustanibhashaakadami.com/ hindustanibhashabharati@gmail.com

वेबसाइट :www.hindustanibhashaakadami.com

साक्षात्कार : राहुल देव, शिक्षाविद्, वरिष्ठ पत्रकार

हिन्दी को राष्ट्रभाषा और विश्व भाषा बनाने की बात मृगतृष्णा जैसी है...

राहुल देव

वरिष्ठ पत्रकार राहुल देव का नाम पत्रकारिता के क्षेत्र में बड़े आदर और सम्मान के साथ लिया जाता है । लखनऊ के 'दि पायोनियर' अंग्रेजी समाचार-पत्र से उन्होंने अपनी पत्रकारिता की शुरूआत की । हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं पर गहरी पकड़ रखने वाले श्री राहुल देव ने 40 वर्ष से भी अधिक समय इलेक्ट्रॉनिक और प्रिंट मीडिया में बिताया है । दि इलस्ट्रेटेड वीकली, करेंट, दि-वीक, प्रोब, माया, जनसत्ता और आज समाज में महत्वपूर्ण जिम्मेदारियां संभालने के अलावा उन्होंने न्यूज चौनल आज तक, दूरदर्शन, जी न्यूज, जनमत और सीएनईबी में प्रमुख जिम्मेदारियां निभाई हैं । सकारात्मक पत्रकारिता के लिए उन्हें देश में हिन्दी के सर्वोच्च पुरस्कार 'गणेश शंकर विद्यार्थी पुरस्कार' तत्कालीन राष्ट्रपति माननीय श्री प्रणव मुखर्जी द्वारा 2017 में और 2019 में पंडित हरिदत्त शर्मा पुरस्कार से सम्मानित किया गया है । 2015 से 2019 के बीच माननीय लोक सभा अध्यक्ष श्रीमती सुमित्रा महाजन द्वारा गठित संसदीय शोध कदम, लोकसभा में मानद सलाहकार के पद पर कार्यरत रहे। सम्प्रति वह एसजीटी विश्वविद्यालय, गुरुग्राम में सलाहकार हैं। वह केन्द्रीय हिन्दी समिति के सदस्य रहे हैं। अभी केन्द्रीय गृह मंत्रालय की हिन्दी सलाहकार समिति के सदस्य हैं। वह सम्यक् न्यास के प्रबंध न्यासी हैं। न्यास भारतीय भाषाओं के संरक्षण, संवर्धन के साथ-साथ सार्वजनिक स्वास्थ्य, विकास, मीडिया प्रशिक्षण आदि क्षेत्रों में सक्रिय हैं।

प्रश्न : आप काफी लम्बे समय से पत्रकारिता से जुड़े हुए हैं । भारतीय भाषाओं के संरक्षण के लिए भी कार्य कर रहे हैं और संसद में भी कार्यरत रहे हैं। आप हमारे पाठकों को अपनी इस यात्रा के बारे में कुछ बताएँ ।

उत्तर : मैं लखनऊ का रहने वाला हूँ। मेरी सारी शिक्षा वहीं हुई है। मैं स्नात्कोत्तर करते समय ही पत्रकार बन गया था। मैं अंग्रेजी साहित्य का विद्यार्थी रहा और पहले अंग्रेजी का ही पत्रकार बना। मैंने 1979 में अंग्रेजी दैनिक 'दि पॉयनियर' से अपनी पत्रकारिता शुरू की। वहाँ पहले प्रशिक्षु बना, फिर उपसंपादक और तब संवाददाता। उसके बाद कई अंग्रेजी पत्रिकाओं में कार्य किया। तकरीबन 9 साल मैंने अंग्रेजी पत्रकारिता की। पायनियर के बाद साप्ताहिक करंट, इलस्ट्रेड वीकली, दि वीक, सूर्या इंडिया में रहा। जब मैं मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद की अंग्रेजी पत्रिका प्रोब इंडिया में मुख्य राजनीतिक संवाददाता था तो उनकी लोकप्रिय हिन्दी पत्रिका पाक्षिक 'माया' के दिल्ली ब्यूरो प्रमुख बीमार पड़े और लम्बी छुट्टी पर गए तो माया के संपादकों ने मुझसे कहा कि आप हमारे लिए एक आवरण कथा लिख दीजिए। मैंने बड़े ही सहज रूप से उनके लिए आवरण कथा लिख दी। वह कथा उनको पसंद आई और उन्होंने कहा कि अब आप माया का दिल्ली ब्यूरो संभालिए । इस तरह से सहज ही मैं अंग्रेजी से हिन्दी में आ गया। तब से हिन्दी में ही हूँ।

'माया' के बाद मुझे प्रभाष जी ने बुलाया और 'मुम्बई जनसत्ता' का स्थानीय संपादक बनाकर वहाँ भेजा। मुम्बई में मैं तकरीबन साढ़े छह साल रहा। वहाँ खूब काम किया। वह मेरी पत्रकारिता का स्वर्णकाल रहा है । मुम्बई से मैंने हिन्दी की पहली नगर पत्रिका 'सबरंग' शुरू की, मुम्बई का सांध्य दैनिक 'संझा जनसत्ता' शुरू किया। वह इतने कम समय में एक दैनिक अखबार की शुरुआत का कीर्तिमान बन गया। विचार आने से लेकर अखबार शुरू होने तक की प्रक्रिया केवल 11 दिन में पूरी हुई। बारहवें दिन अखबार बाजार में आ गया। यह काम इतने कम समय में होता नहीं है लेकिन हो गया क्योंकि अखबार की संकल्पना, प्रारूप, डिजाइन और संपादकीय टीम के अलावा सारा ढांचा वहाँ मौजूद था।

इसके अलावा वहाँ पर एक प्रमुख काम और हुआ, मुम्बई में हिन्दी भाषियों की सामाजिक स्थिति कुछ खास नहीं थी। उनके पास कोई अच्छा, बड़ा और सक्षम सामाजिक, राजनीतिक नेतृत्व नहीं था। उनका संख्या बल तो बहुत था लेकिन वे बड़े बिखरे हुए और आपस में बड़े असंगठित, उपेक्षित और अपमानित-सा जीवन व्यतीत कर रहे थे। उनको सामाजिक, सांस्कृतिक रूप से सक्रिय और संगठित करने की हमने कोशिश की । उनकी सामाजिक, सांस्कृतिक अस्मिता को थोड़ा सुदृढ़ करने की कोशिश की। मुम्बई में उस समय 100 से ज्यादा रामलीलाएँ होती थीं। वह सबसे बड़ा मौका होता था जब मुम्बई का सारा हिन्दी समाज एक साथ जुड़ता था। हमने उनके प्रमुख लोगों को साथ बैठाकर एक रामलीला महासंघ बनाया। प्रमुख स्थानीय लोगों, आयोजकों और संस्थाओं को जोड़कर एक संस्था बनाई और 'जनसत्ता रामलीला पुरस्कार' स्थापित किए। इसमें हम सर्वश्रेष्ठ रामलीला मंचन और उनकी संस्थाओं को पुरस्कृत करते थे ।

हिन्दी पत्रकार संघ का गठन किया। निखिल वागले और उनके दफ्तर पर शिवसेना के हमलों का हम लोगों ने सक्रिय विरोध किया, प्रदर्शन किए, जुलूस निकाले। शिवसेना के लोगों की गालियाँ, धमकियाँ, ईंट-पत्थर खाए। प्रभाष जी ने उसमें अग्रणी भूमिका निभाई। शिवसेना के इतिहास में पहली और आखिरी बार शिवसेना के दफ्तर के ठीक सामने हम लोगों ने पूरे दिन का धरना दिया जिसमें देश भर से आए प्रमुख राष्ट्रीय संपादकों और पत्रकारों ने हिस्सा लिया । ये सब काफी रोमांचक क्षण थे जिन्हें सोच कर आज भी काफी अच्छा लगता है ।

मेरे पत्रकारीय जीवन का यह सबसे गौरवपूर्ण अध्याय था । प्रेस की आजादी के लिए, प्रेस की एकता के लिए और प्रेस की आजादी पर हमला करने वालों के खिलाफ हमने लाठियाँ खाईं, पत्थर खाए, संघर्ष किया, सड़कों पर उतरे । मुझे मिलने वाली धमकियों, पत्नी को अश्लील फोनों, धमकियों को देखते हुए मुम्बई पुलिस ने कई महीने चौबीस घंटे की सुरक्षा प्रदान की। वे जो पत्थर पड़े मैं मानता हूँ कि वे मेरे सबसे गौरवपूर्ण मुकुट हैं।

उसके बाद मुझे प्रभाष जी की सेवा-निवृत्ति के बाद दिल्ली आकर जनसत्ता का नेतृत्व करने का सौभाग्य मिला। जनसत्ता के बाद मुझे 'आज तक' का नेतृत्व करने का निमन्त्रण मिला । उसके बाद दूरदर्शन, जी न्यूज, जनमत, सी.एन.ई.बी. चैनलों में काम किया। अंत में प्रधान संपादक और मुख्य कार्यकारी अधिकारी भी रहा। उसके बाद दो साल दैनिक आज समाज तथा साप्ताहिक इंडिया न्यूज का प्रधान संपादक रहा।

अब मैं स्वतंत्र कार्य कर रहा हूँ। पिछले साल जुलाई तक संसद में कार्यरत रहा। 16वीं लोकसभा की माननीय अध्यक्ष सुमित्रा महाजन जी ने 2015 में एक महत्वपूर्ण नया कार्य शुरू किया था 'अध्यक्षीय शोध कदम' नाम से। उसके मानद सलाहकार के रूप में संचालन की जिम्मेदारी उन्होंने मुझे दी। यह एक अत्यन्त समृद्ध अनुभव था। हम सांसदों के लिए महत्वपूर्ण राष्ट्रीय विषयों पर अच्छे से अच्छे विशेषज्ञों को बुला कर कार्यशाला करते थे। इसे सांसदों का अच्छा प्रतिसाद मिला।

इसी के साथ अपनी संस्था सम्यक न्यास के माध्यम से हमने सार्वजनिक स्वास्थ्य, एच.आई.वी. एड्स, टीकाकरण, जल-स्वच्छता-सफाई, विकास आदि क्षेत्रों में राष्ट्रीय तथा बहुराष्ट्रीय संस्थाओं के साथ काफी काम किया। राष्ट्रीय एड्स नियन्त्रण संगठन, यूनिसेफ, संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम, यू.एन.एड्स, एक्शनएड जैसी वैश्विक संस्थाओं के साथ मीडिया प्रशिक्षण का काम करना एक अत्यन्त समृद्ध अनुभव रहा। एच.आई.वी. एड्स की ठीक रिपोर्टिंग पर देश के 11 राज्यों तथा नेपाल और बांग्लादेश के पत्रकारों के प्रशिक्षण का काम बेहद लाभदायी रहा। हमने यू.एन.डी.पी. की प्रतिष्ठित 'मानव विकास रिपोर्ट' का तीन वर्ष तक हिन्दी अनुवाद भी किया।

इसके साथ 'सम्यक' के मंच से दिल्ली, मुम्बई में प्रमुख भारतीय भाषाओं के विद्वानों के साथ भारत के भाषा संकट पर गंभीर गोष्ठियों की श्रृंखला का भी आयोजन किया। यह काम अभी जारी हैं। इस समय मैं श्री गुरु गोवन्द सिंह जन्म त्रिशताब्दी विश्वविद्यालय के सलाहकार के रूप में कुछ समय दे रहा हूँ ।

प्रश्न : 'मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जाता है।' आप पत्रकारिता से लम्बे समय से जुड़े हैं । आप हिन्दी पत्रकारिता में हिन्दी को किस स्तर पर देखते हैं?

उत्तर : मैं बरसों से यह कह रहा हूँ कि हिन्दी के अधिकतर प्रमुख अखबार और चैनल, कुछ अपवादों को छोड़कर, हिन्दी के दैनिक हत्यारे हो गए हैं। पत्रकारिता से कई तरह की अपेक्षाएँ समाज को होती हैं। पत्रकारिता के कई कर्तव्य होते हैं। सबसे पहला तो यह कि जो हो रहा है वह जनता को बताना और उसे संदर्भ के साथ, परिप्रेक्ष्य के साथ बताना, उसका विश्लेषण करना, टिप्पणी करना। लोकहित में जो कुछ भी प्रकाश में लाए जाने योग्य है, नागरिकों को बताए जाने योग्य है उसको सभी के समक्ष लाना उसका मूल कर्तव्य है। इसी के साथ लोक रुचि का परिष्कार करना भी पत्रकारिता का एक काम है । लोक रुचि के परिष्कार में भाषा का निर्माण तथा परिष्कार भी शामिल है । हमारी पीढ़ी के लोगों ने अपने समय के अखबारों और पत्रिकाओं को पढ़कर भाषा को सुधारा है। अच्छी भाषा आती है अच्छा पढ़कर। बिना अच्छा पढ़े अच्छी भाषा नहीं आ सकती । इसका मतलब यह है कि जो कुछ भी प्रकाशित होता है चाहे दैनिक अखबारों में हो, पत्रिकाओं में हों या पुस्तकों में हों, उसका काम बाकी कामों के अलावा पाठक की भाषा का परिष्कार भी है । पत्रकारिता लोक शिक्षण तो करती ही है साथ-साथ भाषा शिक्षण भी करती है। सार्थक संवाद करना भी सिखाती है ।

अगर इस कसौटी पर हम आज की पत्रकारिता के दोनों माध्यमों टी.वी. और अखबार को कसें तो पाएंगे कि अपवादों को छोड़कर वह रोज अपने दर्शकों और पाठकों की भाषा को बिगाड़ रहे हैं, उन्हें साफ-सुथरी हिन्दी से दूर कर रहे हैं, वंचित कर रहे हैं और उन्हें ऐसी भाषा दे रहे हैं जो न तो हिन्दी है और न अंग्रेजी बल्कि एक अपाहिज, लूली, लंगड़ी, भ्रष्ट भाषा है । नई पीढ़ियां वही सुनकर और पढ़कर बड़ी हो रही हैं । हमारे समाज में भी वह इतना फैल गई है कि अब यह तय करना कठिन हो गया है कि समाज की भाषिक भ्रष्टता का प्रतिबिंब हमें पत्रकारिता की भाषा में मिल रहा है या पत्रकारिता की भाषा समाज की भाषा को भ्रष्ट कर रही है । पत्रकारिता का काम समाज की बुराइयों को ज्यों का त्यों सामने रखना नहीं है बल्कि उनके विश्लेषित, सुविचारित परिष्कृत सत्य को सामने रखना और लोक रुचि का परिष्कार करना है। लेकिन जिस तरीके का माहौल वर्तमान में चल रहा है उसे देख कर लगता है कि हमारी भाषाएँ जीवंत और सबल भाषाओं के रूप में नहीं बचेंगी। इसकी बहुत बड़ी जिम्मेदारी हमारी पत्रकारिता और हमारे मीडिया पर होगी- मुद्रित और टी.वी. दोनों माध्यमों पर।

प्रश्न : राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी के परिदृश्य को आप किस प्रकार देखते हैं? क्या आप हिन्दी की वर्तमान स्थिति से संतुष्ट हैं?

उत्तर : एक तरफ हिन्दी में अब भी बहुत उत्कृष्ट वैचारिक लेखन हो रहा है। साहित्य लेखन पहले से बहुत ज्यादा बड़ी मात्रा में हो रहा है। सोशल मीडिया की नई तकनीक ने सभी को लेखक बना दिया है। जिसके पास भी कहने को कुछ विचार हैं, कविता है, भाषा है उसके पास आज कई मंच उपलब्ध हैं। इस नई तकनीक के आने से हिन्दी लेखन में अपार विस्तार हुआ है। नई तरह का लेखन हो रहा है, नए तरीके का साहित्य, नई शैलियों, विषयों, दृष्टियों के साथ, नए मुहावरों और नए तेवरों के साथ लिखा जा रहा है । नए माध्यमों ने विचार और साहित्य का एक विराट प्रस्फुटन और लोकतंत्रीकरण किया है ।

एक तरफ तो इस नई और लोकतांत्रिक तकनीक के आने से हिन्दी रचनाशीलता का विस्फोटक विस्तार हुआ है। बहुत सारे नए उत्कृष्ट लेखक सामने आए हैं। वहीं दूसरी स्थिति यह है कि आम समाज में, हिन्दी समाज में जो हिन्दी बोली जा रही है वह निरन्तर निम्न से निम्नतर, निकृष्टतर, भ्रष्टतर होती जा रही है। उसको देख कर मुझे वर्षों से यह दिख रहा है, और जिसे मैं चीख-चीख कर कह रहा हूँ, कि अगर यही चलता रहा, ये चीजें अगर नहीं बदली तो हिन्दी नहीं बचेगी। हिन्दी की पत्रिकाओं और चैनलों की बात तो छोड़िए अब हिन्दी के बड़े अखबार भी अपने शीर्षक पूरे अंग्रेजी में देने लगे हैं । अब ये छात्र न लिखकर स्टूडेंट लिखते हैं, अभिभावक नहीं पैरेन्ट्स, कमरा नहीं रूम, शिक्षक नहीं टीचर छापते हैं। अंग्रेजी के शब्दों का ही नहीं अंग्रेजी के व्याकरण का भी इस्तेमाल ये अखबार और चैनल कर रहे हैं, जैसे स्टूडेंट्स, टीचर्स, डॉक्टर्स।

किसी भी तरह के जन माध्यम की सहज प्रकृति होती है कि वह जिस भी चीज को बाहर लाता है, प्रकाशित कर देता है वह अपने आप ही एक विशिष्टता हासिल कर लेता है, सामान्य से बड़ी छवि हासिल कर लेता है। और चाहे नकारात्मक ही हो लेकिन एक खास तरह की लोक उपस्थिति भी प्राप्त कर लेता है। एक तरह का मानक बन जाता है। यही चीज भाषा के साथ होती है पढ़ने और लिखने वालों के लिए। और यूं ऐसी भ्रष्ट, घटिया हिन्दी को ही पत्रकारिता की मुख्य धारा की भाषा बना कर एक बेहद भ्रष्ट और अपाहिज भाषा को स्वीकार्य ही नहीं मानक बनाया जा रहा है ।

जो युवा पाठक हैं, जो अभी परिष्कृत पाठक नहीं हैं, अभी किशोर हैं, युवा हैं, इन अखबारों और चैनलों को पढ़ते हैं देखते हैं उनके लिए तो यही भ्रष्ट हिन्दी अब सही हिन्दी है, सामान्य हिन्दी है और अब स्थिति यह है कि सही, सामान्य, सरल हिन्दी बोलो तो लोगों को उलझन होने लगती है । अब हम लोग 'समय' और 'वक्त' का इस्तेमाल नहीं करते केवल 'टाइम' का इस्तेमाल करते हैं, 'लेकिन' और 'परंतु' अब हमारे मुँह से नहीं निकलते 'बट' निकलता है। इस तरीके से आम मध्यमवर्गीय हिन्दीभाषी लोगों ने भी हिन्दी को दूषित किया है। मैं जब इन रुझानों को अगले 50 सालों पर प्रक्षेपित करता हूँ तो मुझे लगता है अगले 30-40 साल बाद हिन्दी बचने वाली नहीं है।

आज हिन्दी के साहित्यकार लेखन करने के बाद एक-दूसरे के लेखन की सराहना करते हैं, एक-दूसरे की पीठ थपथपाते हैं, आप मेरी प्रशंसा करते हैं मैं आपकी प्रशंसा करता हूँ यही तो हो रहा है हिन्दी साहित्य जगत में, गोष्ठियों में। मेरा सवाल है 20 साल बाद इस साहित्य का पाठक कौन होगा? आपके अपने बच्चे ही आपके पाठक नहीं है तो बाकियों की तो छोड़ ही दीजिए। फिर कौन पढ़ेगा प्रेमचंद और हजारी प्रसाद द्विवेदी को और फिर तुलसी को कौन पढ़ेगा, रामचरितमानस को कौन पढ़ेगा?

आज की पूरी शिक्षा प्रणाली में हिन्दी सिर्फ एक कोने में पड़ा हुआ उपेक्षित विषय है। हर साल अंग्रेजी माध्यम में पढ़ने वाले बच्चों की संख्या दुगनी हो रही है, 2030-35 तक इस देश के सारे बच्चे सिर्फ अंग्रेजी माध्यम में पढ़ रहे होंगे। हर प्रदेश में स्थानीय भाषाई माध्यम विद्यालय बन्द हो रहे हैं। सरकारी विद्यालयों में भी सरकारें अपनी भाषा नीति के खिलाफ अपने हिन्दी माध्यम विद्यालयों को भी अंग्रेजी माध्यम कर रही हैं । मराठी, गुजराती, पंजाबी देश की सभी भाषाओं में यही हो रहा है। निजी विद्यालय तो दशकों से अंग्रेजी माध्यम हैं ही अब सरकारी स्कूल भी अंग्रेजी माध्यम हो रहे हैं।

हमारी नई पीढ़ियाँ देवनागरी सहित अपनी लिपियों से ही अपरिचित बनाई जा रही है। हमारे बच्चों को उनकी अपनी लिपि दिखती ही नहीं है। आज सब जगह पोस्टर, विज्ञापन अंग्रेजी में ही छपते हैं। घरों में उनकी अपनी ही भाषा की किताबें नहीं है, माँ-बाप किताबें लाते ही नहीं है और यदि लाते है तो अंग्रेजी की किताब लाते हैं। हिन्दी की किताबें, पत्रिकाएँ खरीदने में अब लोगों को शर्म आती है। अंग्रेजी वालों के सामने आज हिन्दी वाला दीन हो जाता है।

इन सारी चीजों को मिलाकर जब मैं भविष्य देखता हूँ तो मुझे साफ दिखता है हिन्दी सहित हमारी सभी भाषाएँ बहुत कमजोर और हाशिए की भाषाएँ बन कर ही बचने वाली हैं । ये भाषाएँ रहेंगी, खत्म नहीं होंगी लेकिन फिल्मों की भाषा के रूप में, मनोरंजन की भाषा के रूप में, गालियों की भाषा के रूप में, और ऐसे साहित्य की भाषा के रूप में जिसे पढ़ने वाले मुट्ठी भर लोग होंगे। यदि हमें हिन्दी का भविष्य देखना है तो यह नहीं देखना होगा कि कितने लोग हिन्दी समझ और बोल रहे होंगे। असली प्रश्न यह है कि कितने लोग हिन्दी में पढ़ और लिख रहे होंगे। भविष्य का संकेत वहाँ से मिलेगा और सारे संकेत बता रहे हैं कि हिन्दी पढ़ने और लिखने वालों की संख्या लगातार कम हो रही है।

यह मैंने हिन्दी का भविष्य और वर्तमान आपके सामने रखा है। इसमें दुखद यह है कि जिस वर्ग को इस खतरे से सबसे पहले अवगत होना चाहिए, उद्वेलित और व्याकुल होना चाहिए, यह खतरा जिन्हें सबसे पहले दिखना चाहिए, हिन्दी में वह जो रचने वाला वर्ग है, साहित्यकार और लेखक है, सबसे ज्यादा मौन वही है। इस विषय पर वह शुतुरमुर्ग हो गया है। वे अपनी रचना में, अपनी रचना प्रक्रिया में, अपनी वाहवाही में इतना आत्ममुग्ध और व्यस्त है कि जिस भाषा में वे रच रहे हैं, इतना यश, कीर्ति और पुरस्कार पा रहे हैं, उस भाषा की जमीन दिनों-दिन खिसक रही है और उनको यह दिखता ही नहीं है। उनको कोई कष्ट ही नहीं होता, उनको कोई चिन्ता ही नहीं है। यह मेरे लिए सबसे बड़ा आश्चर्य है। दूसरा आश्चर्य है कि हिन्दी जगत से, हिन्दी शिक्षा जगत से जुड़े लोग, हिन्दी के शिक्षक, हिन्दी जिनकी आजीविका है वे भी इस पर आंदोलित नहीं हैं, चिंतित नहीं हैं।

प्रश्न : वर्तमान में विद्यालयों में प्राथमिक शिक्षा अंग्रेजी माध्यम से दी जाती है और आठवीं कक्षा से हिन्दी को वैकल्पिक बनाकर विदेशी भाषाएँ पढ़ाई जाती हैं। हिन्दी के प्रति इस रवैये पर आप क्या कहना चाहेंगे?

उत्तर : यह हिन्दी को खत्म करने का रवैया है, गला घोटने का रवैया है, उसका भविष्य नष्ट करने का रवैया है और यह घोर मूर्खतापूर्ण रवैया है। यह ऐसा रवैया है जो हिन्दी को ही नहीं बल्कि भारत में रहने वाले करोड़ों बच्चों के भविष्य को, उनके बौद्धिक विकास को अवरुद्ध करने वाला, उनके भविष्य को बिगाड़ने वाला है। अभी जो नई शिक्षा नीति

का प्रारूप आया है वह सौभाग्य से काफी अच्छा आया है । पहली बार किसी शिक्षा नीति के प्रारूप में भाषा को इतना महत्व और इतनी जगह दी गई है। इसमें प्राथमिक शिक्षा में मातृभाषा के महत्व को काफी प्रबलता से रेखांकित किया गया है । यह बच्चे के बौद्धिक और संवेगात्मक विकास के लिए मातृभाषा या घर की भाषा के महत्व पर केन्द्रित है। यह अभी तक नहीं हुआ था। लेकिन हमारे देश की अब तक चल रही राष्ट्रीय शिक्षा नीति के स्पष्ट उल्लंघन में राज्य सरकारें और केंद्र सरकार के शैक्षिक संगठन भी धीरे-धीरे अपनी शिक्षा से हिन्दी सहित सभी भारतीय भाषाओं को बेदखल कर रहें है। इसके बहुत बड़े दुष्परिणाम हो रहे हैं और होंगे। मैं चकित हूँ कि हमारे नीति निर्माताओं को बिलकुल सामने खड़ा यह संकट दिखता ही नहीं है। यह मेरे लिए बड़े आश्चर्य का विषय है।

प्रश्न : पिछले दिनों ही हमारी नई शिक्षा नीति का प्रारूप आया और दक्षिण राज्यों के दबाव के चलते उसमें से हिन्दी को अनिवार्य भाषा बनाने वाले खंड को हटा दिया गया। आप इसे किस रूप में देखते हैं ?

उत्तर : शुरू में मुझे भी झटका लगा था । उस कदम से बहुत बुरा लगा था लेकिन मैंने उसके बाद इस विषय का अध्ययन किया कि तमिलनाडु के इस पुराने, ऐतिहासिक और असाधारण रूप से उग्र हिन्दी विरोध का कारण क्या है, उसकी जड़ें कहाँ हैं? मुझे इसमें कई चीजें मिली हैं। अभी अध्ययन चल रहा है लेकिन मुझे कुछ समझ में आने लगा है कि यह क्यों हो रहा है।

दरअसल इसे बाकायदा निर्मित किया गया है । इस स्थिति को बनने में 100 साल लगे हैं । तमिल लोगों के दिलो-दिमाग में हिन्दी के प्रति घृणा एक लम्बी प्रक्रिया और काल में भरी गई है। इस सामूहिक मानसिकता के चार स्तंभ हैं- हिन्दी से घृणा, ब्राह्मणवाद से घृणा, संस्कृत से घृणा और उत्तर भारत के नकली आर्य-द्रविड़ विभाजन में आर्यों से घृणा । आर्य और द्रविड़ कृत्रिम विभाजन से यह शुरू हुआ था, और जो कुछ भी उत्तर से आता था उससे, उत्तर की हर चीज और प्रभाव का विरोध और उससे नफरत करने की भावना तमिल लोगों के दिमाग में विधिवत भरी गई है।

इसका इतिहास काफी लम्बा है मैं उसमें नहीं जाऊँगा । तमिल भाषा के प्रति उसके लोगों का जो प्रेम है वह सामान्य प्रेम नहीं एक असामान्यता और विकृति की हद तक पहुँचने वाला प्रेम है । वह तमिल भक्ति की भावना में बदल चुका है। तमिल को उसके साहित्य और लोक मानस में देवी, माँ की जगह प्राप्त है। कई दशकों की इस लम्बी प्रक्रिया ने एक ओर एक विशिष्ट तरह की तमिल भाषाभक्ति को जन्म दिया वहीं हिन्दी के प्रति उनके दिलों में घृणा भी उत्पन्न कर दी है। इसके काफी प्रमाण उपलब्ध हैं । गीतों, कविताओं, लेखों और भाषणों में आज से 50-60-70 साल पहले तक हिन्दी को राक्षसी, तमिल की हत्यारी, कुलटा और पूतना जैसी भाषा के तौर पर निरूपित किया गया है । यह भाव उनके अन्दर भरा गया है। इसका दूसरा पहलू यह है कि वे तमिल को एक देवी के रूप में, माँ के रूप में और एक असामान्य, अलौकिक, आध्यात्मिक अस्मिता और हस्ती के रूप में देखते हैं। अपनी भाषा से यह रिश्ता हमारे लिए अपरिचित है। हम लोग हिन्दी को ऐसे नहीं देखते। किसी भी भारतीय भाषा के लोग उसे ऐसे नहीं देखते। हम जिस भाव से भारत माता बोलते हैं वही भाव उनके मन में तमिल माता के लिए है।

अकेली तमिल ऐसी भाषा है जिसमें जब उसके समर्थकों को लगा कि हिन्दी हमारे ऊपर थोपी जा रही है तो उन्होंने आत्मदाह किया। 20 से ज्यादा लोगों ने तमिल के लिए अपना बलिदान दिया। ऐसे हालात के बाद, तमिलों के इतने कड़े विरोध के इतिहास के बाद एक बार फिर से इस विरोध की भावना को उग्र होने का अवसर देना, उस आंदोलन को फिर से खड़े होने का मौका देना उचित नहीं होता। मैं समझता हूँ सरकार ने ठीक किया इसको वापस लेकर ।

मेरा सिर्फ यह कहना है कि इस नीति के प्रारूप को नए शिक्षा मंत्री के पदभार ग्रहण करने वाले दिन ही तुरंत उनके हाथ में सौंपने की जरूरत नहीं थी। ऐसी जल्दी क्या थी? एक हफ्ता रुक जाते। एक समिति बना कर उसे इस मुद्दे पर जाँच करने को कहा जा सकता था। विरोधी दलों, संगठनों से संवाद की शुरुआत की जा सकती थी। सरकार थोड़ी सावधानी बरतती, इतनी हड़बड़ी न दिखाती तो इस फजीहत से बच सकती थी कि नए शिक्षा मंत्री और नई सरकार का पहला काम ही इस प्रारूप को वापस लेना और हड़बड़ी में विरोधियों से समझौता करके उसे संशोधित करना हो गया। लेकिन यह हमारे लिए संतोष की बात होनी चाहिए कि तमिलनाडु और कर्नाटक के कुछ वर्गों को छोड़कर बाकी देश के किसी भी प्रदेश से नई शिक्षा नीति में हिन्दी की अनिवार्यता को लेकर कोई विरोध नहीं हुआ। पूरे देश में संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी की स्वीकार्यता है, न केवल स्वीकार्यता है बल्कि हिन्दी की मांग है। तमिलनाडु में, कर्नाटक सहित सब जगह है । तमिलनाडु में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, जो गाँधी जी ने 1918 में स्थापित की थी, हिन्दी की परीक्षाएँ लेती है। उसमें लगभग साढे चार लाख तमिल लोग हिन्दी सीख रहे हैं। मैंने 2014 का एन.डी.टी.वी. अंग्रेजी का एक वीडियो देखा जिसमें चेन्नई के अंग्रेजी माध्यम के एक बड़े स्कूल के बच्चे और उनके शिक्षक अंग्रेजी में यह कह रहे हैं कि हमें हिन्दी चाहिए, हम हिन्दी पढ़ना चाहते हैं। तो इस समय जो नई पीढ़ी वहाँ पर है, जो युवा हैं, वे और उनके शिक्षक भी हिन्दी की जरूरत और महत्व महसूस कर रहे हैं। वे हिन्दी सीख भी रहे हैं । यह एक शुद्ध राजनीतिक विरोध है और द्रविड़ अलगाववादी राजनीति का बड़ा हिस्सा और परिणाम है। हिन्दी और तमिलनाडु का यह जो इतिहास है उसकी इस विशिष्टता को ध्यान में रखते हुए मेरे ख्याल से अभी प्राथमिक शिक्षा में हिन्दी की अनिवार्यता के मामले को छोड़ देना चाहिए।

प्रश्न : आजादी के बाद काफी समय गुजर गया है लेकिन उसके बावजूद हम आज तक अपनी मातृभाषाओं को शिक्षा के साथ नहीं जोड़ पाए हैं। ऐसे क्या कारण हैं कि हम लोग ऐसी कोई ठोस नीति नहीं बना पाए जिससे प्राथमिक शिक्षा हम अपनी मातृभाषा में दे सकें हालांकि इस पर चर्चाएं बहुत हुई हैं?

उत्तर : अभी तक तो यही हो रहा था यानी मातृभाषा या स्थानीय प्रादेशिक भाषा में पढ़ाई। मैं समझता हूँ कि पिछले 25 साल में आर्थिक

उदारीकरण जब से तेज हुआ है तब से अंग्रेजी की बाढ़ आई है वरना आज भी सभी प्रदेशों की जो शिक्षा नीतियाँ हैं उनमें तो मातृभाषा माध्यम का ही प्रावधान है । नीति के नाम पर तो अब भी वही नीति है लेकिन व्यवहार लगातार बदलता जा रहा है। मुख्य बात यह है कि आजादी के बाद डॉ. कोठारी, डॉ. राधाकृष्णन, राममूर्ति जैसे बड़े शिक्षाविदों को छोड़कर शिक्षाविदों ने, सरकार ने, समाज ने भाषाओं के बारे में गहराई से चिन्तन करना, उन को गंभीरता से लेना ही एक तरह से छोड़ दिया था । भाषाओं को बचाने की जरूरत है, उन पर इस तरह का संकट खड़ा हो सकता है यह अनुमान ही कोई नहीं लगा पाया, गाँधीजी भी नहीं और नेहरू जी भी नहीं। आज हम पाते हैं कि सारे शिक्षा आयोगों की सिफारिशों के खिलाफ, राष्ट्रीय शिक्षा नीति में घोषित नीति के खिलाफ लगातार कार्य किया गया है और किया जा रहा है। इसका परिणाम यह हुआ है कि आज सारी भारतीय भाषाएँ बहुत गहरे संकट में आ गई हैं । पूरे देश में शिक्षा व्यवस्था की जो आज दुर्दशा है यह उसी का हिस्सा है कि भाषा की भी दुर्दशा है । जो किसी भी नए स्वाधीन देश के लिए सबसे पहला काम होना चाहिए था कि अपने लोगों को अपने तरीके से, अपनी भाषाओं और उनके वातावरण में शिक्षित करने का ताकि वह अपनी देशज, मौलिक प्रतिभा और मनीषा के अनुसार अपना भविष्य निर्माण कर सकें उस को गंभीरता से लिया ही नहीं गया। अंग्रेजी के सम्मोहन में छोड़ दिया गया ।

प्रश्न : भारत की भाषिक विविधता एक समस्या के रूप में देखी जाती है। कुछ लोग हिन्दी पर वर्चस्ववादी होने का आरोप भी लगाते हैं। यह कहाँ तक सही है?

उत्तर : शुरू में मुझे भी यह बात बुरी लगती थी। हिन्दी के एक प्रबल समर्थक और कार्यकर्ता के रूप में मैं चूंकि अपने को कहीं से भी वर्चस्ववादी नहीं पाता इसलिए मेरी प्रिय हिन्दी वर्चस्ववादी हो सकती है यह मानने में मुझे दिक्कत होती थी। लेकिन आज मैं चीजों को गहराई से समझने और अध्ययन करने के बाद पाता हूँ कि कई क्षेत्र और आयाम ऐसे हैं जहाँ पर हिन्दी भी स्थानीय भाषाओं के लिए एक वर्चस्ववादी भाषा हो सकती है । यह स्थिति विशेष तौर से आदिवासी समाजों के लिए बिल्कुल वास्तविक है। आदिवासी हमारे देश का बड़ा हिस्सा हैं। उनकी भाषाएँ इंडो-यूरोपीयन भाषाओं में नहीं आती हैं । जो चार-पाँच भाषा परिवार भारत में हैं उनमें जो सबसे छोटा परिवार है उसमें ज्यादातर आदिवासी भाषाएँ आती हैं । जिसे हम मुख्यधारा या भारतीय जीवन धारा कहेंगे हमारे आदिवासी उससे एक अलग जीवन जीते हैं । उनकी भाषाएँ अलग हैं, उनकी जीवनपद्धति, मूल्यव्यवस्था अलग है, तौर-तरीके अलग हैं, दिलो-दिमाग अलग हैं, रस्मो रिवाज अलग हैं, दुनिया अलग है ।

उनके बच्चे जब किसी गाँव के प्राथमिक विद्यालयों में जाते हैं तो वहाँ की जो स्कूली हिन्दी है, जो हमारी किताबी हिन्दी है वह उनके लिए उतनी ही अपरिचित होती है जितनी हमारे घर के बच्चों के लिए अंग्रेजी । इससे एक तो उन बच्चों के मन में शिक्षा, विद्यालय के प्रति और अपनी भाषा के प्रति अरुचि हो जाती है। साथ ही उनका आत्मबोध, आत्म-सम्मान आहत होता है, अपनी भाषा और अपने अस्तित्व को लेकर एक हीन भावना भी गहरे बैठ जाती है। दूसरे, कक्षा में बरती जानी वाली इस अपरिचित हिन्दी से उनका अधिगम प्रभावित होता है। वे विषय समझ और सीख नहीं पाते। ऐसे विद्यालयों में जहाँ पर हिन्दी बोलने वाले या स्थानीय प्रमुख भाषा बोलने वाले बच्चे और आदिवासी भाषा बोलने वाले बच्चे साथ होते हैं वहाँ आदिवासी बच्चे अपने आप को अलग, उपेक्षित और अपमानित महसूस करते हैं। उनकी भाषा का, उनके रंग रूप का मजाक उड़ाया जाता है।

धीरे-धीरे इसका एक बहुत ही खराब मनोवैज्ञानिक असर होता है और जो सीखने के लिए उनको भेजा जाता है वह तो वे सीखते ही नहीं है उल्टा वे नई तरह की ग्रंथियाँ लेकर लौटते हैं । आदिवासी भाषा बोलने वालो को पहले 5 वर्ष की शिक्षा अपनी मातृभाषा, अपने घर की भाषा में मिलनी चाहिए। हिन्दी को भी वहाँ दूसरी तीसरी के बाद धीरे से लाया जाना चाहिए। अंग्रेजी तो दसवीं-ग्यारहवीं से पहले बिल्कुल नहीं लानी चाहिए । ऐसी स्थिति में हिन्दी का जो विरोध है, अब उसकी अपनी सहायक भाषाओं से और बोलियों से होने लगा है ।

प्रश्न : क्या हमसे त्रिभाषा फार्मूला को सही ढंग से लागू करने में चूक हुई है? क्या इस समय इस फार्मूले का कोई औचित्य बचा है?

उत्तर : बहुत ज्यादा चूक हुई है। नई शिक्षा नीति का प्रारूप यह स्वीकार कर रहा है कि हिन्दीभाषी राज्यों ने भाषा सूत्रों को ईमानदारी से लागू नहीं किया है। हमने किया यह है कि हम हिन्दी और अंग्रेजी तो शौक से पढ़ते हैं और तीसरी भाषा के नाम पर सब संस्कृत ले लेते हैं । संस्कृत न तो ठीक से पढ़ाई जाती है, न समझाई जाती है। केवल उसमें अंक ज्यादा मिल जाते हैं, शिक्षक उसमें दिल खोलकर अंक दे देते हैं इसलिए बच्चे इस विकल्प को चुन लेते हैं । हिन्दी भाषी राज्यों ने यह बहुत बड़ी बेईमानी की है और इसका बहुत खराब असर दक्षिण भारत के राज्यों पर पड़ा है। इसलिए कि उन लोगों ने अपने यहाँ ठीक से हिन्दी सिखाई है और आज भी सिखा रहे हैं । केरल, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश में लोग हिन्दी सीख रहे हैं लेकिन हमने उनकी भाषाओं को न तो सीखा ही और न ही अपने बच्चों को सिखाया । हिन्दी भाषियों की समस्या यह है कि दूसरे भाषाई समाजों की तुलना में समाजिक स्तर पर वह बेहद घटिया समाज है। वह एक बहुत आत्मलीन, आत्मलज्जित और अंतर्मुखी समाज है । वह एकभाषी है। जनगणना के आंकड़े बताते हैं कि भारत में सबसे ज्यादा एकल भाषी हिन्दी भाषी हैं। दूसरी सभी भाषाओं के लोगों में एकभाषिता हमसे कम और बहुभाषिता हमसे ज्यादा पाई जाती है ।

कई जगह पर तो लोगों को दो-दो, तीन-तीन भाषाएँ आती हैं, लेकिन हिन्दी वाले सिर्फ हिन्दी पढ़ते और जानते हैं। न तो उन्हें दूसरी भाषा आती है और न ही वे जानना चाहते हैं । इससे नुकसान भी उन्हीं का हुआ है, हिन्दी का हुआ है। स्वाभाविक रूप से दूसरे समाजों में इसका विरोध और प्रतिक्रिया होती है और दूसरी भाषाओं वालों का यह तीखा तथा वाजिब सवाल बन जाता है कि भाई जब आप हमारी भाषा सीखने को तैयार नहीं है तो हम आपकी भाषा क्यों सीखे, क्यों बोलें? इसका हमारे पास कोई जवाब नहीं होता।

प्रश्न : जब भी देश में चुनाव आते हैं आठवीं अनुसूची का मुद्दा गर्मा जाता है। आठवीं अनुसूची में सम्मिलित होने की पंक्ति में लगी तमाम हिन्दी पट्टी की बोलियों और भाषाओं के विषय में आप क्या कहना चाहेंगे?

उत्तर : दुर्भाग्य से हमारे संविधान में जो कई रहस्य है उनमें एक आठवीं अनुसूची का रहस्य भी है । आठवीं अनुसूची क्यों बनी, बनाने का उद्देश्य क्या था, उसमें भाषाओं के चयन का आधार क्या था, किस भाषा को लेना है, किसको नहीं लेना है इसका कहीं कोई लिखित उल्लेख नहीं मिलता, कहीं कोई व्याख्या नहीं है। मैंने इसको थोड़ा बहुत समझने की कोशिश की है। शुरू में इसमें 14 भाषाएँ थी जो अब 22 हो गई हैं। अधिकतर भाषाएँ तो अपने आकार के कारण आई हैं । यह स्वाभाविक है। कुछ भाषाएँ राजनीतिक कारणों से आई जैसे सिंधी। सिन्ध अब भारत में नहीं है लेकिन तब भी सिंधी को रखा गया क्योंकि उसके राजनयिक और राजनीतिक कारण थे। सिंधी बड़ी संख्या में यहाँ रहते हैं और सिंधी को हम अपना मानते हैं। उसको बचाने के लिए हमने उसे सरकारी मान्यता दी।

संस्कृत किसी भी एक जगह की भाषा नहीं है लेकिन वह हमारी शास्त्रीय भाषा है, भारत की आत्मा है। इसलिए उसको बचाने की जरूरत थी। मैथिली पहले नहीं थी, काफी बाद में आ गई क्योंकि मैथिली वालों ने बहुत संघर्ष किया उसके लिए। हिंसक आंदोलन हुआ और उन लोगों ने एक तरीके से जबरदस्ती आंदोलन करके अपने को शामिल करवा लिया । उससे मैथिली का कोई भला हुआ हो ऐसा तो नहीं दिखता लेकिन वह आ गई । अब इस समय 38 भाषाओं से प्रार्थना पत्र गृह मंत्रालय में रखे हुए हैं जो सब आठवीं अनुसूची में शामिल होना चाहती हैं । अभी तो जो ये 22 हैं उनकी अपनी हालत कोई अच्छी नहीं है। इन 38 को शामिल करने पर जब 60-65 हो जाएंगी तो इनका और सबका क्या होगा पता नहीं ।

कई लोगों ने इस सूची के उद्‌गम और आयामों को समझने के लिए काफी खोजबीन और लेखन किया है। जो कुछ भी हमारे विद्वानों ने कहा है, सुभाष कश्यप जैसे लोगों ने कहा है, उसे देखने के बाद मेरी यह समझ बनी है कि आठवीं अनुसूची में किन भाषाओं को रखा गया और क्यों रखा गया इसका सूत्र है संविधान की धारा 351 । उसमें कहा गया है- 'संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिन्दी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे जिससे वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिन्दुस्तानी में और आठवीं अनुसूचि में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ उसके शब्द-भंडार के लिए मुख्यत: संस्कृत से और गौणत: अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे।' यानी इन भाषाओं से अभिव्यक्ति, शब्द, शैली लेकर हिन्दी का एक सर्व स्वीकार्य राष्ट्रीय स्वरूप उभरे।

हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का जो प्रश्न था वह किसी-न-किसी रूप में आज भी बना हुआ है। इस पर आरंभ से खूब विवाद हुआ है। संविधान सभा में यह अकेला विषय था जिस पर पूरे 3 दिन की बहस हुई, वह भी बहुत तीखी। हिन्दी अंतत: अखिल भारतीय बनी तो राजभाषा के रूप में ही। राष्ट्रभाषा का पद और प्रतिष्ठा उसे नहीं मिल सकी ।

देश की सर्वमान्य संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी स्थापित, प्रचलित तथा विकसित हो, यह संभावित उद्देश्य तो आठवीं अनुसूची का स्पष्ट दिखता है । इसके अलावा कोई स्पष्टीकरण नहीं है कि यह सूची क्यों बनी, उसके पीछे की क्या चयन पद्धति थी ? क्या तर्क थे? उसका आधार क्या था ? तथा आगे किन आधारों पर इस सूची में परिवर्तन किए जाएंगे। इन प्रश्नों के कोई स्पष्ट उत्तर नहीं मिलते। केवल अलग-अलग संविधान विशेषज्ञों के अनुमान और व्याख्याएँ मिलती हैं।

आज की स्थिति में उसके विस्तार से भाषाओं को कोई ठीक लाभ होगा यह नहीं दिखता। क्योंकि जो अभी तक 70 साल में हमने देखा है वह यह बताता है कि इन सूचियों से भाषाओं का विकास नहीं होता। वह अगर होता है और हुआ है तो अपने-अपने राज्यों में सरकारों, प्रशासन तथा जनता के सक्रिय भाषा व्यवहार से, साहित्य लेखन से। जिन भाषाओं के पास अपना प्रदेश था, राज्य तथा समाज की शक्ति थी वे विकसित हुईं और बढ़ीं। लेकिन जिनके पास राज्य की यह शक्ति नहीं थी वे कमजोर हुई हैं आठवीं अनुसूची में रहने के बावजूद, जैसे- सिंधी, कश्मीरी तथा संस्कृत। इन नई भाषाओं के अनुसूची में शामिल होने की मांग का एकमात्र आधार अस्मिता की पहचान का प्रश्न है । भाषा हमारी अस्मिता का बड़ा तत्व और आधार होती है। इसलिए मुझे इस मांग का मनोविज्ञान समझ में आता है। भाषा भावनाओं से जुड़ी होती है इसलिए उसके सवाल पर लोगों का उद्वेलित और आंदोलित होना समझ में आता है । हम सब अपनी-अपनी भाषाओं को लेकर बहुत भावुक होते हैं। लेकिन मैं समझता हूँ भारत जैसे समर्थ देश के लिए यह संभव होना चाहिए कि वह अनुसूची में शामिल भाषाओं को ही नहीं देश की सारी भाषाओं को बचाए और उनका विकास कर सके, संवर्धन कर सके। उसके लिए राज्य को सब कुछ करना चाहिए। यह राज्य की जिम्मेदारी है । वह नहीं करता, उसने नहीं किया, यह उसकी कोताही है, नाकामी है।

लेकिन आज जो ये 22 भाषाएँ हैं, हम उनको 60 कर दें, 65 कर दें, 70 कर दें तो उससे केवल भयानक जटिलताएँ बढ़ेंगीं। उससे व्यवहारिक लाभ क्या होगा? सिर्फ कुछ नए पद उत्पन्न हो जाएंगे, कुछ नए विभाग और बजट बन जाएंगे, कुछ पुरस्कार घोषित हो जाएंगे, नए पुरस्कारों और पदों की राजनीति शुरू हो जाएगी। कुछ लोगों को लाभ होगा। कुछ लोग इन भाषाओं आंदोलनों के नेता बन संसद और विधानसभाओं में आ जाएंगे। कुछ नए राजनीतिक करियर बन जाएंगे। यही सब आज तक अनुसूची की भाषाओं में होता आया है। लेकिन उससे उन भाषाओं का वर्तमान और भविष्य बेहतर और सुदृढ़तर नहीं हुए हैं, बल्कि सारी भाषाओं का संकट गहराया ही है।

प्रश्न : क्या आपको लगता है कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का मुद्दा अभी भी जीवित है? हमारी तत्कालीन विदेश मंत्री ने

11वें विश्व हिन्दी सम्मेलन के मंच से हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए गंभीर प्रयासों की बात कही थी। तो क्या हिन्दी प्रेमी यह आशा रखें कि हिन्दी को जल्द ही राष्ट्रभाषा घोषित कर दिया जाएगा?

उत्तर : स्वर्गीय सुषमा स्वराज जी को मैं पिछले कई दशकों में हिन्दी के प्रति सबसे गंभीर बड़े नेताओं में अग्रणी मानता हूँ । लेकिन उनके प्रति अपनी सारी श्रद्धा के बावजूद मैं अब हिन्दी को राष्ट्रभाषा और विश्वभाषा बनाने की बात को मृगतृष्णा मानता हूँ । हिन्दीभाषी होने के नाते किस को यह अच्छा नहीं लगेगा कि हिन्दी राष्ट्रभाषा बने। लेकिन हम हिन्दी वालों के साथ कई समस्याएँ हैं। सामान्य ही नहीं बड़े-बड़े लोगों को मैं यह कहते पाता हूँ कि हिन्दी तो हमारी मातृभाषा है, भारत की मातृभाषा है। हिन्दी पूरे देश की मातृभाषा नहीं है भाई। हिन्दी तो हिन्दी प्रदेशों में ही सब की मातृभाषा नहीं है। लेकिन हिन्दी वाले पता नहीं किस दुनिया में जीते हैं कि उनको लगता है सारा देश हिन्दी भाषी है । वे बहुत आराम से हिन्दी को राष्ट्रभाषा बोल देते हैं, भारत की मातृभाषा बोल देते हैं। यह मूर्खता है। राजभाषा बनने के बाद भी उसका अनुपालन 50% भी नहीं हुआ है। वह लगातार सरकारी कामकाज में पिछड़ रही है। कुछ जगह जरूर बढ़ी है लेकिन पूरा माहौल ही हिन्दी समेत सभी भारतीय भाषाओं के खिलाफ जा रहा है ।

ऐसे समय में राष्ट्रभाषा के मुद्दे को उठाने का क्या मतलब है? जो राजभाषा को स्वीकार करने और व्यवहार के स्तर पर अपनाने के लिए 72 साल बाद तैयार नहीं हो सके हैं वे उसे राष्ट्रभाषा के रूप में कैसे स्वीकर करेंगे? संपर्क भाषा के रूप में भी कई लोग इसका विरोध करते हैं। मुख्यत: दक्षिण भारत और बंगाल के लोग। उस विरोध को हम छोड़ भी दें तो अब देश आजादी के समय से जब राष्ट्रभाषा का प्रश्न ज्वलंत तथा सक्रिय था उससे बहुत आगे निकल आया है ।

मुझे बहुत अच्छा लगेगा, मैं दिल से चाहता हूँ कि हिन्दी राष्ट्रभाषा हो क्योंकि इससे राष्ट्र का फायदा होगा। लेकिन अभी जो परिस्थिति है भाषाओं की उसमें हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाएँ, संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनाएँ, विश्वभाषा बनाएँ यह मजाक जैसी लगती है। विश्व में बहुत से देशों में लोग हिन्दी बोलते हैं। हिन्दी दो जगह राजभाषा भी है। वहाँ भारत सरकार को, हिन्दी समाज को भरपूर मदद करनी चाहिए। उसको बढ़ावा देना चाहिए, उनके संसाधनों का विकास करना चाहिए, जो कुछ हम उसको उन देशों में दे सकते हैं देना चाहिए। किन्तु कुछ स्वयंसेवी संस्थाओं और व्यक्तियों को छोड़ कर कोई इसे ठीक से, गंभीरता से नहीं कर रहा है। केन्द्र सरकार तो नहीं ही कर रही है।

लेकिन इसके बजाय आप उस को विश्व भाषा बना रहे हैं, संयुक्त राष्ट्रसंघ की भाषा बनाने की नारेबाजी कर रहे हैं। जिस भाषा का अपने देश में विरोध हो, जिसकी हैसियत और प्रतिष्ठा रोज घट रही हो, जिसके प्रभुवर्ग उसका प्रयोग न करते हों वह कैसे विश्वभाषा बन जाएगी? ऐसा कहाँ होता है? इससे लाभ क्या होगा? यह मरीचिका है। इसलिए मैं इन दोनों प्रश्नों की तरफ बहुत सक्रिय होने की, आंदोलित होने की जरूरत महसूस नहीं करता। मेरे सामने तो हिन्दी को बचाने का प्रश्न है। सारी भारतीय भाषाएँ संकटग्रस्त हैं। उन्हें कैसे बचाएँ ? हिन्दी को कैसे बचाएँ, मराठी को कैसे बचाएँ, पंजाबी को कैसे बचाएँ, उर्दू को कैसे बचाएँ अंग्रेजी के बढ़ते वर्चस्व से? मेरी मातृभाषा पंजाबी है। वह हिन्दी से ज्यादा संकट में है। उर्दू, सिंधी, कश्मीरी, डोगरी बेहद गहरे संकट में हैं।

प्रश्न : आप हिन्दुस्तानी भाषा भारती पत्रिका के पाठकों को क्या संदेश देना चाहेंगे?

उत्तर : संदेश केवल यह है कि लोगों को हिन्दी की अच्छी पुस्तकें पढ़ने के लिए प्रेरित कीजिए। अच्छा पढ़ेंगे तो अच्छा बोलेंगे, अच्छा लिखेंगे। हम निजी स्तर पर अपने-अपने परिवारो में यह कोशिश करें कि हम जब हिन्दी बोलें तो सिर्फ हिन्दी बोलें । मैं बता चुका हूँ कि मैं मूलत: अंग्रेजी साहित्य का विद्यार्थी हूँ, प्रथमत: अंग्रेजी का पत्रकार हूँ । तो अंग्रेजी से मुझे कोई समस्या नहीं है। मुझे उससे बकायदा इश्क है। अंग्रेजी से प्रेम करता हूँ। उसको देश के लिए सामूहिक स्तर पर और हम सबके लिए व्यक्तिश: बहुत उपयोगी मानता हूँ।

हमारा भविष्य ज्ञान से बनेगा। हम सबको ज्ञान की जरूरत है और अंग्रेजी में इस समय दुर्भाग्य से हिन्दी की तुलना में कई हजार गुना ज्यादा ज्ञान है। नया ज्ञान निर्माण अंग्रेजी में सबसे अधिक हो रहा है। यदि हमें ज्ञान चाहिए तो हमें अंग्रेजी से लेना होगा, फ्रेंच से लेना होगा, हिब्रू और मंडारिन से भी लेना होगा। अंग्रेजी वैश्विक भाषा है, आधुनिक ज्ञान-विज्ञान का सबसे बड़ा भंडार है। उसमें मौलिक शोध, लेखन, चिन्तन, वैज्ञानिक और आधुनिक विमर्श ज्यादा है इसलिए हमें अंग्रेजी की जरूरत है। हम केवल हिन्दी के सहारे आगे नहीं बढ़ पाएंगे। अंग्रेजी और दूसरी भाषाओं से ज्ञान लेकर अभी हमें हिन्दी के कई पक्षों को मजबूत करने की जरूरत है। हिन्दी में बहुत से बड़े-बड़े ज्ञान-गड्ढे हैं उनको भरने की जरूरत है। हिन्दी को बहुत सारा ज्ञान निर्माण करने की जरूरत है, बहुत सी ज्ञान सामग्री को लाने की जरूरत है। वह सब हम करें । हम हिन्दी में ज्ञान निर्माण करें। बड़ी मात्रा में अनुवाद करें। जो इस में सक्षम हैं वे आगे आएँ । केवल साहित्य निर्माण न करें ज्ञान निर्माण करें। सबको यह समझाएँ कि अपनी स्थानीय भाषा में पारंगत हो कर, उस पर अधिकार करके हम बाकी भाषाएँ भी बेहतर सीख सकते हैं । अगर हम अपने बच्चों को यह मिश्रित, लंगड़ी-लूली अपाहिज हिन्दी सिखाएंगे तो हम उनको भाषिक अपाहिज बना रहे हैं। और जो आज भाषिक अपाहिज है वे बच्चे बड़े होकर बौद्धिक अपाहिज बनेंगे। इसलिए उनको अच्छी हिन्दी सिखाएँ । खुद भी अच्छी हिन्दी बोलें और बच्चों को अच्छी अंग्रेजी भी सिखाएँ। आप भी अच्छी अंग्रेजी सीखें। दोनों को अलग रखें और दोनों को अच्छे से सीखें ।

साक्षात्कार : कृष्ण कुमार यादव

भारतीय डाक सेवा अधिकारी
निदेशक, डाक सेवाएँ, लखनऊ मुख्यालय परिक्षेत्र

भाषा मात्र सरकारी संरक्षण से नहीं बल्कि अपने मौलिक ज्ञान भंडार, चिन्तन, अनुसंधान और रचे जा रहे साहित्य से समृद्ध होती है।

कृष्ण कुमार यादव

10 अगस्त, 1977 को तहबरपुर, आजमगढ़ (उ०प्र०) में जन्मे श्री कृष्ण कुमार यादव ने जवाहर नवोदय विद्यालय, आजमगढ़ एवं तत्पश्चात् इलाहाबाद वि.वि. से 1999 में राजनीति शास्त्र में एम.ए. किया। वर्ष 2001 में भारत की प्रतिष्ठित 'सिविल सेवा' में चयन पश्चात् आप 'भारतीय डाक सेवा' के अधिकारी बने । सूरत, लखनऊ, कानपुर, अंडमान-निकोबार द्वीप समूह, इलाहाबाद व जोधपुर में नियुक्ति के पश्चात् फिलहाल लखनऊ में निदेशक डाक सेवाएँ पद पर आसीन श्री यादव प्रशासन के साथ-साथ साहित्य, लेखन और ब्लागिंग के क्षेत्र में भी चर्चित नाम हैं। देश-विदेश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं और इंटरनेट पर वेब पत्रिकाओं व ब्लॉग पर निरंतर प्रकाशित होने वाले श्री कृष्ण कुमार यादव की विभिन्न विधाओं में अब तक कुल 7 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं- 'अभिलाषा' (काव्य-संग्रह, 2005), 'अभिव्यक्तियों के बहाने' व 'अनुभूतियाँ और विमर्श' (निबंध-संग्रह, 2006 व 2007), 'India Post : 150 Glorious Years' (2006), 'क्रांति-यज्ञ : 1857-1947 की गाथा', 'जंगल में क्रिकेट' (बाल-गीत संग्रह, 2012) व '16 आने 16 लोग' (निबंध-संग्रह, 2014)। शताधिक पुस्तकों/संकलनों में आपकी रचनाएँ प्रकाशित होने के साथ-साथ आकाशवाणी लखनऊ, कानपुर, इलाहाबाद, जोधपुर व पोर्टब्लेयर और दूरदर्शन से आपकी कविताएँ, वार्ता, साक्षात्कार का समय-समय पर प्रसारण होता रहता है। श्री कृष्ण कुमार यादव को प्रतिष्ठित सामाजिक, साहित्यिक संस्थाओं द्वारा विशिष्ट कृतित्व, रचनाधर्मिता और प्रशासन के साथ-साथ सतत् साहित्य सृजनशीलता हेतु शताधिक सम्मान और मानद उपाधियाँ प्राप्त हैं।

प्रश्न : 'हिन्दुस्तानी भाषा भारती' पत्रिका की ओर से आपका हार्दिक स्वागत है। आप एक लेखक, ब्लॉगर, भारत सरकार में वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी हैं। वर्तमान में आप भारतीय डाक सेवा, लखनऊ मुख्यालय परिक्षेत्र के निदेशक के पद को सुशोभित कर रहे हैं। कृपया अपनी यहाँ तक के यात्रानुभव के बारे में हमारे पाठकों को संक्षिप्त में बताएँ ।

उत्तर : मेरा जन्म 10 अगस्त, 1977 को आजमगढ़ जनपद में तहबरपुर में हुआ। मेरे पिता श्री राम शिव मूर्ति यादव जी उत्तर प्रदेश सरकार में स्वास्थ्य शिक्षा अधिकारी रहे और माँ श्रीमती विमला यादव एक कुशल गृहिणी। आरम्भिक शिक्षा बाल विद्या मंदिर, तहबरपुर और तत्पश्चात् कक्षा 6 से 12 तक जवाहर नवोदय विद्यालय, जीयनपुर, आजमगढ़ में हुई। तत्पश्चात् इलाहाबाद विश्वविद्यालय से मैंने क्रमश: 1997 और 1999 में बी.ए. और एम. ए. (राजनीति शास्त्र) की उपाधि धारण की। वर्ष 2000 में मैं संघ लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित सिविल सर्विसेज परीक्षा में शामिल हुआ और अपने प्रथम प्रयास में ही चयनित होकर भारतीय डाक सेवा का अधिकारी बना। लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी और रफी अहमद किदवई नेशनल पोस्टल एकेडमी, गाजियाबाद में लगभग दो वर्ष के प्रशिक्षण पश्चात् मेरी प्रथम नियुक्ति प्रवर डाक अधीक्षक, सूरत मंडल के पद पर हुई। वहाँ से आरम्भ हुआ यह सफर लखनऊ, कानपुर, पोर्टब्लेयर (अंडमान-निकोबार द्वीप समूह), प्रयागराज, जोधपुर होते हुए वर्तमान में लखनऊ मुख्यालय परिक्षेत्र के निदेशक, डाक सेवाएँ पद तक पहुँचा।

साहित्य व लेखन में विद्यार्थी काल से ही मेरी अभिरुचि रही है। आजमगढ़ वैसे भी महापंडित राहुल सांकृत्यायन, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', मौलाना शिब्ली नोमानी, श्याम नारायण पाण्डेय, कैफी आजमी जैसी शख्शियतों से जाना जाता है। नवोदय विद्यालय, आजमगढ़ में अध्ययन के दौरान ही मैंने छोटी-छोटी कविताएँ लिखनी आरम्भ कर दी थीं। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अध्ययन के दौरान तमाम चीजें मुझे उद्धेलित करती थीं, तब इन सब वैचारिक भावों को मैंने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में भेजना आरंभ किया। फिर तो कुछ न कुछ लिखने का सिलसिला ही चल पड़ा। चूंकि मेरे पिताजी सामाजिक विषयों पर आरम्भ से ही लिखते रहे हैं, ऐसे में लेखन के प्रति परिवार में आरम्भ से ही सकारात्मक माहौल था। प्रशिक्षण के दौरान विभिन्न प्राकृतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक स्थलों पर प्रवास साहित्य-साधना व काव्य-बोध की दृष्टि से भी फायदेमंद रहा और इस दौरान मैंने तमाम रचनाएँ रचीं। फिलहाल, विभिन्न विधाओं में मेरी सात पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं- 'अभिलाषा' (काव्य-संग्रह, 2005), 'अभिव्यक्तियों के बहाने' व 'अनुभूतियाँ और विमर्श' (निबंध-संग्रह, 2006 व 2007) 'India Post : 150 Glorious Years' (2006), 'क्रांति-यज्ञ : 1857-1947 की गाथा', 'जंगल में क्रिकेट' (बाल-गीत संग्रह, 2012) व '16 आने 16 लोग' (निबंध-संग्रह, 2014)। देश-विदेश की तमाम पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित होने के साथ-साथ आकाशवाणी और दूरदर्शन से भी प्रसारित होती रहती हैं। जहाँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशन की अपनी सीमाएं और बंदिशें हैं, वहीं

ब्लॉग अपनी भावनाओं, अभिव्यक्तियों और रचनाओं को खुलकर कहने-लिखने का अवसर देता है। इसी क्रम में 2008 में मैं ब्लॉगिंग से भी जुड़ा और 'शब्द-सृजन की ओर' और 'डाकिया डाक लाया' ब्लॉग की शुरुआत की। यह मेरा सौभाग्य है कि मेरी जीवन संगिनी आकांक्षा भी साहित्य-सृजन से जुड़ी हुई हैं और दोनों बेटियाँ अक्षिता व अपूर्वा भी इस ओर प्रवृत्त हैं।

प्रश्न : शिक्षा नीति किसी देश की स्वर्णिम भविष्य की चाबी होती है। भारत की नई शिक्षा नीति के बारे में आप क्या कहना चाहेंगे ?

उत्तर : बच्चे देश का भविष्य ही नहीं नींव भी होते हैं और नींव जितनी मजबूत होगी इमारत उतनी ही बुलंद होगी। इसी सोच के आधार पर समय-समय पर देश की शिक्षा नीति तैयार की जाती है। इसी क्रम में मई, 2019 में डॉ. कस्तूरीरंगन समिति ने नई शिक्षा नीति का मसौदा तैयार कर मानव संसाधन विकास मंत्रालय को सौंपा। प्रस्तावित नई शिक्षा नीति में 'शिक्षा का अधिकार' कानून के दायरे को व्यापक बनाया गया है। पिछली शिक्षा नीतियों में प्राथमिक व उच्च प्राथमिक स्तर की शिक्षा को ही शामिल किया गया था, जो 6 से 14 वर्ष तक की आयु वाले बच्चों को इस कानून के दायरे में लाने की बात करती है। नई शिक्षा नीति में प्राथमिक-पूर्व शिक्षा के महत्त्व को स्वीकारते हुए इस कानून का दायरा प्राथमिक-पूर्व शिक्षा से लेकर 12वीं कक्षा तक की शिक्षा के लिये लागू करने की सिफारिश की गई है। प्रस्तावित शिक्षा नीति विद्यार्थियों के सीखने पर जोर देती है, ताकि उसमें आजीवन हर पल अपने आस-पास घटित सामान्य से सामान्य घटनाओं से भी कुछ नया सीखने की क्षमता विकसित हो। इसके अलावा उनमें शिक्षा के द्वारा प्रोफेशनल स्किल्स के साथ-साथ तर्क शक्ति, आलोचनात्मक चिंतन, समस्या समाधान का कौशल तथा सामाजिक एवं भावनात्मक कौशल सिखाने को बढ़ावा देना है।

इस नीति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि स्कूली शिक्षा, उच्च शिक्षा के साथ कृषि शिक्षा, कानूनी शिक्षा, चिकित्सा शिक्षा और तकनीकी शिक्षा जैसी व्यावसायिक शिक्षाओं को भी इसके दायरे में लाया गया है। नई शिक्षा नीति के प्रारूप में राष्ट्रीय नियामक प्राधिकरण बनाने का सुझाव भी दिया गया है ताकि शिक्षा को समग्र रूप में पर्यावरण हितैषी व ज्ञानवान समाज बनाने के उद्देश्यों को हासिल किया जा सके। आवासीय विद्यालयों में बालिकाओं के लिये नवोदय स्कूलों जैसी व्यवस्था करने, शिक्षण में तकनीक का इस्तेमाल, शिक्षा के दौरान विषय-वस्तु का बोझ कम करने, द्विभाषा के स्थान पर त्रिभाषा फार्मूला जैसे सुझाव वाकई सराहनीय हैं। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, नवाचार तथा अनुसंधान के संबंध में लोगों की बदलती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु यह ऐसी शिक्षा नीति है, जो विद्यार्थियों को आवश्यक कौशल व ज्ञान से युक्त कर विज्ञान, प्रौद्योगिकी, शिक्षाविदों और उद्योग में जनशक्ति की कमी को पूरा कर सके।

प्रश्न : त्रिभाषा सूत्र को सही रूप में लागू करने में हमसे चूक हुई है, खासकर हिन्दी पट्टी के राज्यों में। इससे उपजी भाषाई मतभेदों को लेकर आपके क्या विचार हैं ?

उत्तर : किसी भी राष्ट्र या समाज के लिए भाषा उसकी अस्मिता से जुड़ी होती है। स्वभाषा के माध्यम से ही व्यक्तित्व का पूर्ण विकास सम्भव है। चूँकि भारत में भाषाओं की बहुलता है, ऐसे में जरूरी है कि मातृभाषा के साथ-साथ अन्य भाषाओं का भी ज्ञान प्राप्त किया जाये। सन् 1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुसार, त्रिभाषा सूत्र का मतलब है कि एक तीसरी भाषा (हिन्दी और अंग्रेजी के अलावा) जो कि आधुनिक भारत से संबंधित होनी चाहिए, का उपयोग हिन्दी भाषी राज्यों में शिक्षा के लिए किया जाना चाहिए। एक संस्तुति यह भी रही है कि हिन्दी भाषी राज्यों में दक्षिण की कोई भाषा पढ़ाई जानी चाहिए। लेकिन ऐसा होता नहीं दिखा। त्रिभाषा सूत्र तभी कारगर सिद्ध हो सकता है जब हिन्दी भाषी क्षेत्र अन्य भाषाओं को सम्मान देना शुरू करेंगे। इसके लिए उन्हें दूसरे राज्यों में बोली जाने वाली कम से कम एक या इससे अधिक अन्य भारतीय भाषाओं को जानने की जरूरत है। साथ ही दक्षिण भारत के साथ-साथ पूर्वोत्तर राज्यों की भाषाओं की ओर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। यह अनायास ही नहीं है कि कॉडर आवंटन के बाद आई.ए.एस अधिकारियों को उस राज्य की भाषा सीखनी होती है ताकि वे लोगों से जुड़ सकें और उनसे संवाद करके जनहित में कार्य कर सकें।

प्रश्न : भाषाविदों का मत है कि विदेशी भाषा में दी जाने वाली शिक्षा अप्राकृतिक शिक्षा पद्धति है। भारत में शिक्षा के माध्यम भाषा के संदर्भ में आप क्या कहना चाहेंगे ?

उत्तर : भाषा भावों की अभिव्यक्ति और विचार-विनिमय का सशक्त माध्यम है। एक आदर्श स्थिति की बात करें तो शिक्षा के माध्यम रूप में मातृभाषा ही श्रेष्ठ होती है। परन्तु इसके लिए यह भी जरूरी है कि उस भाषा में पर्याप्त मौलिक ज्ञान, चिंतन और अनुसंधान हो। उस भाषा में स्थानीय स्तर से लेकर वैश्विक मामलों तक पर पर्याप्त मौलिक पुस्तकें उपलब्ध हों। भाषा को माध्यम रूप में अपनाने हेतु जरूरी है कि सिर्फ पाठ्यक्रमों की भाषा ही न बने, बल्कि विज्ञान, तकनीक, प्रशासन, न्यायालय और बाजार की भी भाषा बने। जहाँ तक भारत का सवाल है, यहाँ भाषाओं और बोलियों की बहुलता है और उनका एक समृद्ध इतिहास है। पर स्वतंत्रता के बाद से ही राष्ट्रभाषा के मामले में क्षेत्रीय हितों और तुच्छ स्वार्थों को लेकर विवाद होता रहा है और इसका फायदा निरन्तर अंग्रेजी को मिलता रहा है। नतीजन, एक विदेशी भाषा हमारी सिरमौर बन गई।

भारत में प्रारम्भिक शिक्षा स्तर पर मातृभाषा को पर्याप्त स्थान दिया जाता है। परन्तु जैसे-जैसे बच्चों की सीखने की क्षमता बढ़ती है, उन्हें अन्य भाषाओं से भी रू-ब-रू कराना आवश्यक है। त्रिभाषा सूत्र को लागू करने का कारण भी यही है। वैश्वीकरण के इस दौर में भाषा सिर्फ अभिव्यक्ति ही नहीं कैरियर सँवारने का कार्य भी कर रही

है। ऐसे में भारत में विद्यार्थियों में विदेशी भाषाओं को सीखने की ललक बढ़ रही है तो विदेशों में लोग हिन्दी सीख रहे हैं।

प्रश्न : आठवीं अनुसूची को लेकर जिस तरह की क्षेत्रवाद की राजनीति हो रही है उसे आप कैसे देखते हैं? क्या आठवीं अनुसूची में सम्मिलित भाषाओं की वर्तमान स्थिति संतोषजनक है?

उत्तर : भारत में राज्यों का पुनर्गठन भाषाई आधार पर हुआ है। जहाँ भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन ने क्षेत्रीय आकांक्षाओं को पूरा किया वहीं इससे लोगों के अंदर यह भावना बलवती हुई कि स्वतंत्र भारत में उनकी इच्छाओं, भावनाओं और सांस्कृतिक पहलुओं के साथ-साथ उनकी क्षेत्रीय भाषा को भी महत्त्व दिया जा रहा है। परन्तु जैसे-जैसे क्षेत्रवाद की राजनीति आरम्भ हुई, भाषाएँ भी उसका मोहरा बनने लगीं। भाषाओं की जिस बहुलता पर हमें गर्व होना चाहिए, दुर्भाग्यवश वह आज क्षेत्रवाद का शिकार हो चुकी है जो कि एक अच्छा संकेत नहीं है। आज इस बात की आवश्यकता है कि हर भाषा की अच्छी चीजों को वैश्विक स्तर पर सामने लाया जाये, पर यहाँ तो भाषाओं में आपस में ही प्रतिद्वन्द्वता पैदा की जा रही है, जिसे कि उचित नहीं ठहराया जा सकता।

भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची भारत की भाषाओं से संबंधित है। आज संसार भर में लगभग 5000 भाषाएँ और बोलियाँ बोली जाती हैं। उनमें से लगभग 1652 भाषाएँ व बोलियाँ भारत में सूचीबद्ध की गई हैं, जिनमें 63 भाषाएँ अभारतीय हैं। चूँकि इन 1652 भाषाओं को बोलने वाले समान अनुपात में नहीं हैं अत: संविधान की आठवीं अनुसूची में आरम्भ में 18 भाषाओं को शामिल किया गया जिन्हें देश की कुल जनसंख्या के 91 प्रतिशत लोग प्रयोग करते हैं। इनमें भी सर्वाधिक 46 प्रतिशत लोग हिन्दी का प्रयोग करते हैं अत: हिन्दी को राजभाषा के रूप में वरीयता दी गयी। वर्तमान में इस सूची में 22 भाषाएँ शामिल हैं। इनमें सभी भाषाओं की स्थिति एक समान नहीं कही जा सकती। वस्तुत: कोई भी भाषा मात्र सरकारी संरक्षण से ही समृद्ध नहीं होती बल्कि अपने मौलिक ज्ञान भंडार, चिंतन, अनुसंधान और उस भाषा में रचे जा रहे साहित्य, कला व संस्कृति की त्रिवेणी से समृद्ध होती है। भाषा का व्यवहारिक जीवन में ज्यादा से ज्यादा प्रयोग उसे युवा पीढ़ी के करीब लाता है। इंटरनेट के इस दौर में तमाम ऐसे माध्यम हैं, जिससे किसी भी भाषा को बढ़ावा दिया जा सकता है।

प्रश्न : हिन्दी की राष्ट्रीय स्वीकार्यता के पथ पर दक्षिण भारत के राज्यों द्वारा हिन्दी पर वर्चस्ववादी होने का आरोप लगाया जाता है। आप इस बात को कैसे देखते हैं ?

उत्तर : संवैधानिक दृष्टि से हिन्दी भारत की राजभाषा है। अनुच्छेद 351 में हिन्दी भाषा के विकास के लिए निर्देश दिया गया है जिसके अनुसार संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिन्दी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे जिससे वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने भी 1917 में गुजरात शैक्षिक सम्मेलन में अपने अध्यक्षीय भाषण में राष्ट्रभाषा की आवश्यकता पर बल देते हुए कहा था कि भारतीय भाषाओं में केवल हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जिसे राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाया जा सकता है। स्वतंत्रता संग्राम में भी हिन्दी और उसकी लोकभाषाओं ने घर-घर स्वाधीनता की जो लौ जलायी वह मात्र राजनैतिक स्वतंत्रता के लिए ही नहीं थी, वरन् सांस्कृतिक अस्मिता की रक्षा के लिए भी थी। इससे इतना तो स्पष्ट है कि, भारत में हिन्दी एक स्वीकार्य भाषा है। संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल भाषाओं में भी, सर्वाधिक 46 प्रतिशत लोग हिन्दी का प्रयोग करते हैं अत: हिन्दी को राजभाषा के रूप में वरीयता दी गयी। यह सच है कि आरम्भिक दौर में दक्षिण भारत के कुछेक राज्यों ने हिन्दी का विरोध किया, परन्तु अब यह विरोध भी सीमित हो गया है। यहाँ तक कि दक्षिण भारत में भी हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए तमाम संस्थायें सक्रिय हैं और कुछेक उत्कृष्ट हिन्दी पत्रिकाओं का सम्पादन व प्रकाशन भी इन राज्यों से किया जा रहा है। हिन्दी पूरे देश को जोड़ने वाली भाषा है और इसकी स्वीकार्यता दिन-ब-दिन बढ़ रही है।

प्रश्न : प्राथमिक स्तर से ही माध्यम एवं अनिवार्य विषय के रूप में अंग्रेजी तथा माध्यमिक स्तर के बाद हिन्दी को विदेशी भाषाओं फ्रेंच, जर्मन, स्पेनिश आदि के समकक्ष वैकल्पिक विषय के रूप में पढ़ाया जाता है। इससे भारतीय भाषाओं विशेष रूप से हिन्दी की स्थिति को आप कैसे देखते हैं ?

उत्तर : हिन्दी को अभी भी प्राथमिक स्तर पर अनिवार्य विषय के रूप में ही पढ़ाया जाता है। विभिन्न भाषाओं के बारे में सीखना और जानना अनुचित नहीं कहा जा सकता, पर यह राजभाषा हिन्दी की कीमत पर नहीं होना चाहिए। भारत में त्रिभाषा सूत्र अपनाने का कारण भी यही रहा है। वैश्वीकरण के इस दौर में यदि भारत में लोग विदेशी भाषाएँ पढ़ रहे हैं तो विदेशों में भी लोग हिन्दी पढ़ रहे हैं। यह एक परस्पर प्रक्रिया है और इसे उसी भाव में स्वीकार करने की जरूरत है।

प्रश्न : आप एक सफल ब्लॉगर हैं। कुछ लोगों का मानना है कि हिन्दी में जितने भी ब्लॉगर लिख रहे हैं, वे केवल पत्रकारिता एवं साहित्य तक ही सीमित है। इस विषय में आप क्या कहना चाहेंगे?

उत्तर : ब्लॉगिंग की दुनिया ने लोगों को एक ऐसा मंच मुहैया कराया है जहाँ वे बिना किसी खर्च और बंदिश के अपनी बात कह सकते हैं। हिन्दी की बात करें तो एक लाख से ज्यादा ब्लॉग हिन्दी में लिखे जा रहे हैं। हिन्दी ब्लॉग केवल पत्रकारिता एवं साहित्य तक ही सीमित हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। आज हिन्दी ब्लॉगिंग में हर कुछ उपलब्ध है, जो आप देखना चाहते हैं। राजनीति, धर्म, अर्थ, मीडिया, स्वास्थ्य, खान-पान, साहित्य, कला, शिक्षा, संस्कार, पर्यावरण, संस्कृति,

विज्ञान-तकनीक, खेती-बाड़ी, ज्योतिषी, समाज सेवा, पर्यटन, वन्य जीवन, नियम-कानूनों की जानकारी सब कुछ ब्लॉग अपने पन्नों पर समेटे हुए है। नारी विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श से लेकर बाल विमर्श व दिव्यांग विमर्श तक पर यहाँ चर्चा हो रही है। यहाँ खबरें हैं, सूचनाएं हैं, विमर्श हैं, आरोप-प्रत्यारोप हैं और हर किसी का अपना सोचने का नजरिया है। हिन्दी ब्लॉगिंग की सक्रियता सिर्फ भारत तक ही नहीं बल्कि विदेशों तक विस्तारित है। यह वर्ग ऐसा है जो रोजगार की खोज में विदेशों में भले ही जा बसा, पर मातृभूमि से लगाव जस का तस है। उनकी रोजी-रोटी की भाषा भले ही दूसरी हो, पर उनका मन हिन्दी में ही रमता है।

प्रश्न : हिन्दी प्रेमियों एवं हिन्दी के प्रबल समर्थकों का मानना है कि वैश्विक स्तर पर हिन्दी की अपनी धमक है। इसके मूल्यांकन के लिए आप किन मानकों का अनुसरण करते हैं ?

उत्तर : भूमण्डलीकरण के दौर में दुनिया के सबसे बडे लोकतंत्र, सर्वाधिक जनसंख्या वाले राष्ट्र और सबसे बड़े उपभोक्ता बाजार की भाषा हिन्दी को नजर अंदाज करना सम्भव नहीं है। वर्ष 2015 के आँकड़ों के अनुसार दुनिया में लगभग एक अरब तीस करोड़ लोग हिन्दी बोल रहे हैं और अब हिन्दी बोलने वालों की संख्या दुनिया में सबसे ज्यादा हो चुकी है। उससे पहले चीन की मंदारिन भाषा बोलने वालों की संख्या सबसे ज्यादा थी। दुनिया भर के विदेशी विश्वविद्यालयों ने हिन्दी को एक महत्वपूर्ण विषय के रूप में अपनाया है। 150 से अधिक विदेशी विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ाई जा रही है। विज्ञान-प्रौद्योगिकी से लेकर तमाम महत्वपूर्ण विषयों पर हिन्दी की किताबें अब उपलब्ध हैं, इंटरनेट पर हिन्दी की वेबसाइटों में बढ़ोत्तरी हो रही है, सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र की कई कम्पनियों ने हिन्दी भाषा में परियोजनाएं आरम्भ की हैं। गूगल से हिन्दी में जानकारियाँ धड़ल्ले से खोजी जा रही हैं। पहले जहाँ तमाम फॉण्ट के चलते हिन्दी का स्वरूप एक जैसा नहीं दिखता था, वहीं वर्ष 2003 में यूनीकोड हिन्दी में आया और इसके माध्यम से हिन्दी को अपने विस्तार में काफी सुलभता हासिल हुई। भारतीय फिल्में विदेशों में अच्छा व्यवसाय कर रही हैं । विश्व बैंक से जुड़ी वित्तीय जानकारियाँ अब हिन्दी में भी उपलब्ध कराई जा रही हैं। प्रतिष्ठित अंग्रेजी प्रकाशन समूहों ने हिन्दी में अपने प्रकाशन आरम्भ किए हैं तो बीबीसी, स्टार प्लस, सोनी, जी.टी.वी., डिस्कवरी आदि अनेक चैनलों ने हिन्दी में अपने प्रसारण आरम्भ कर दिए हैं।

अंतर्राष्ट्रीय मंच पर बढ़ी भारत की साख के कारण भी दुनिया के लोगों की हिन्दी में रुचि बढ़ी है। भारत के पेशेवर युवा दुनिया के सभी देशों में पहुँच रहे हैं और दुनिया भर की बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भारत में निवेश के लिए आ रही हैं। इसलिए एक तरफ हिन्दीभाषी दुनिया भर में फैल रहे हैं, तो दूसरी ओर बहुराष्ट्रीय कंपनियों को अपना व्यवसाय चलाने के लिए अपने कर्मचारियों को हिन्दी सिखानी पड़ रही है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के विज्ञापनों में हिन्दी के साथ-साथ अब क्षेत्रीय बोलियों का भी प्रयोग होने लगा है। निश्चितत: मनोरंजन और बाजार पर मजबूत पकड़ ने हिन्दी भाषा में सम्प्रेषणीयता की नई शक्ति पैदा की है। तमाम देशों में भारतियों को आकर्षित करने के लिए चुनावी घोषणा पत्र की प्रतियाँ हिन्दी में छपवाकर वितरित की जा रही हैं। ऑक्सफोर्ड अंग्रेजी शब्दकोष में हिन्दी के तमाम प्रचलित शब्दों, मसलन-आलू, अच्छा, अरे, देसी, फिल्मी, गोरा, यार, जंगली, धरना, गुण्डा, बिंदास, लहंगा, मसाला इत्यादि को स्थान दिया गया है। निश्चितत: इन सबसे हिन्दी भाषा को वैश्विक स्तर पर एक नवीन प्रतिष्ठा मिली है।

प्रश्न : कुछ लोगों का कहना है कि हिन्दी साहित्य के लिए पाठकों का अभाव है। एक साहित्यकार होने के नाते आपके मतानुसार इसके क्या कारण हो सकते हैं?

उत्तर : हिन्दी साहित्य में पठनीयता का अभाव बिलकुल नहीं है। आज भी कालजयी रचनाएँ बड़े मनोयोग से पढ़ी जाती हैं। मेरे विचार में रचनाधर्मिता और लेखन अभिव्यक्तियों का सिर्फ एक माध्यम भर नहीं है, बल्कि सामाजिक सरोकारों के प्रति भी इसकी भूमिका और कर्तव्य है। साहित्य और लेखन किसी निर्वात में कार्य नहीं करते अपितु इनमें लोकजीवन के प्रति समर्पण भाव और उत्तरदायित्व का प्रवाह भी होता है। इसीलिए साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। पर इसके बावजूद यदि यह पठनीयता का सवाल उठ रहा है तो इसके पीछे स्तरीय पुस्तकों या रचनाओं का अभाव, दूसरों की रचनाओं को पढ़ने की बजाय अपनी ही रचनाओं या पुस्तकों को पढ़वाने की आत्ममुग्धता, हिन्दी पुस्तकों के ऊँचे मूल्य, पाठकों की बजाय पुस्तकालयों में खपाने के लिए पुस्तकों का प्रकाशन जैसे तमाम कारण हो सकते हैं। हिन्दी साहित्य को यदि उचित प्रतिष्ठा नहीं मिली है तो उसका एक अन्य प्रमुख कारण हिन्दी पर कुण्डली मारकर बैठे साहित्यकारों-प्रकाशकों-सम्पादकों का त्रिगुट है। अपना वर्चस्व न टूटने देने हेतु यह त्रिगुट नवागन्तुकों को हतोत्साहित करता है। पैसे व चमचागिरी की बदौलत एक अयोग्य व्यक्ति समाज में प्रतिष्ठा पाता है वहीं योग्य व्यक्ति अपनी रचनाएँ लेकर सम्पादकों और प्रकाशकों के दरवाजे भटकता रहता है। निश्चितत: हिन्दी में पठनीयता के विकास में ऐसे कदम अवरोध उत्पन्न करते हैं।

प्रश्न : किसी भी भाषा की लिपि उसकी आत्मा होती है। भारतीय भाषाओं को रोमन लिपि में लिखने के प्रचलन और बोलचाल में हिंगलिश को आप कैसे लेते हैं ?

उत्तर : किसी भी भाषा को मूर्त आकार लिपि ही देती है। यह वाचिक व्यवहार को एक खास तरह की व्यवस्था व अनुशासन में ले आती है। यही कारण है कि लिपि के अभाव में भाषाओं को समाप्त होने में देरी नहीं लगती। दुनिया की कई भाषाएँ इसीलिए विलुप्त होने के कगार पर हैं। भाषाविदों का भी मानना है कि, चूंकि भाषा में ही हमारी ज्ञानराशि का अधिकांश भाग बसता है इसलिए लिपि ज्ञान को सीमित देश और काल की सीमाओं से मुक्त कर उसे देश-देशांतर में

शेष पृष्ठ संख्या 30 पर

रिपोर्ट

वेब संगोष्ठी-भाषाओं के संरक्षण में शिक्षकों की भूमिका

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी द्वारा रविवार, 28 जून, 2020 को 'भाषाओं के संरक्षण में शिक्षकों की भूमिका' विषयक वेब संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस वेब संगोष्ठी के विशिष्ट वक्ताओं के रूप में शिक्षाविद, लेखिका, समीक्षक एवं मीडिया विश्लेषक प्रो. कुमुद शर्मा, कवि, लेखक एवं प्रशासनिक सेवा अधिकारी (आईएएस) श्री राकेश मिश्र जी, वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग के अध्यक्ष श्री अवनीश कुमार तथा हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के अध्यक्ष श्री सुधाकर पाठक उपस्थित थे। हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी की त्रैमासिक पत्रिका 'हिन्दुस्तानी भाषा भारती' के संथाली भाषा पर केन्द्रित विशेषांक के लोकार्पण के साथ ही आयोजन का शुभारंभ किया गया। इस संगोष्ठी को दो सत्रों में आयोजित किया गया। प्रथम सत्र में विशिष्ट वक्ताओं ने भाषाओं के संरक्षण में शिक्षकों की रचनात्मक एवं महत्वपूर्ण भूमिका के संबंध में अपने वक्तव्य प्रस्तुत किए वहीं दूसरे सत्र में प्रतिभागियों के लिए प्रश्नोत्तर सत्र रखा गया जिसमें वक्ताओं ने शिक्षकों की जिज्ञासाओं एवं प्रश्नों का तर्कपूर्ण उत्तर दिया। उपस्थित शिक्षकों को संबोधित करते हुए श्री राकेश मिश्र ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि हम भाषा को लेकर आत्मनिर्भर नहीं है। यदि हम भाषाओं की बात करें तो हिन्दी सहित सभी भारतीय भाषाओं को लम्बे समय तक राष्ट्र का संरक्षण ही नहीं मिला। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भाषाओं के सम्बन्ध में कुछ कार्य अवश्य हुए किन्तु आज तक भारतीय भाषाओं की स्थिति ऐसी नहीं है कि इनमें से किसी भी भाषा को जानने, समझने या बोलने से हमारा काम चल जाए। देश की सबसे बड़ी चुनौती यह है कि हमें अपने बारे में जानने के लिए भी विदेशी भाषा का आश्रय लेना पड़ता है, क्योंकि हमारी संस्कृति, सभ्यता एवं इतिहास को खोजकर विदेशी लेखकों ने पुस्तकें लिखी।

विदेशी भाषा में लिखित उन पुस्तकों को पढ़कर हम अपने देश के भूगोल, प्राकृतिक संपदाओं, सामाजिक संरचनाओं आदि के बारे में जानते हैं। भाषा को लेकर इससे बड़ी परनिर्भरता क्या हो सकती है? उन्होंने आगे बताया कि भाषाओं के संरक्षण में शिक्षकों की जिम्मेदारी बहुत महत्वपूर्ण है। शिक्षक भाषा का संवाहक है, अत: दुरूह को आसान बनाने और सहज तरीके से भाषा सिखाने का कार्य उन पर होता है। विदेशी भाषा कहीं जाकर कमाने-खाने का एवं खुद को व्यक्त करने का माध्यम हो सकती है किन्तु मौलिक चिंतन, विकास और संस्कार केवल अपनी भाषा से ही प्राप्त होते है। बच्चों के अवचेतन मस्तिष्क में संस्कार के बीज बोने का कार्य एक भाषा शिक्षक ही बखूबी निभा पाता है। भारतीय भाषाओं के संरक्षण के विषय में चर्चा करते हुए प्रो. कुमुद शर्मा ने अपने मंतव्य में कहा कि भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में एक ऐसी अवधारणा को विकसित किया जा रहा है जिसमें एक ही विश्व भाषा होगी, एक ही विश्व मानव होगा और एक ही विश्व संस्कृति होगी । इस तरह पूरे विश्व को एक ही संस्कृति के खांचे में ढाला जाएगा और यह माना जा रहा है कि वो विश्व भाषा अंग्रेजी ही होगी ।

सुरेखा शर्मा

जब एक ही विश्व मानव होगा तब यह तय कर पाना मुश्किल होगा कि कौन भारत का है, कौन यूरोप के किस देश का है? इस भूमंडलीकरण के चक्र में अंग्रेजी के वर्चस्व से कहीं हमारी भारतीय भाषाओं का क्षरण न हो इसलिए हमें भारतीय भाषाओं के संरक्षण की चिंता करनी चाहिए । 2010 में गणेश नारायण दास के नेतृत्व में 27 राज्यों में 3000 सदस्यों के दल द्वारा भारतीय भाषाओं का सर्वेक्षण किया गया। अपने सर्वेक्षण में उन्होंने दावा किया कि भारत की जो लोक भाषाएँ अथवा स्थानीय भाषाएँ हैं उन्हें काटने की साजिश रची जा रही है। अपनी रिपोर्ट में उन्होंने जो निष्कर्ष दिये हैं उसमें कहा गया है कि आने वाले समय में 780 भारतीय भाषाओं में से 400 भाषाएँ विलुप्त हो जाएंगी। उन्होंने कुछ ऐसी बातों का भी जिक्र किया है जो हमें थोड़े समय के लिए संतुष्टि दे सकती हैं, कि अंग्रेजी, विश्व की 30 भाषाओं में सम्मिलित भारतीय भाषाएँ हिन्दी, बांग्ला, तमिल, मलयालम, कन्नड, पंजाबी आदि जो कि बहुत समृद्ध हैं,उन्हें नष्ट नहीं कर सकती क्योंकि यह भाषाएँ जन उपयोग में प्रचलित हैं, इन भाषाओं में शिक्षा दी जाती हैं, संगीत की परंपरा भी कायम हैं और मीडिया भी इन भाषाओं को समर्थन देता है । वहीं दैनिक जागरण की खबर को उद्धृत करते हुए प्रो. कुमुद शर्मा ने कहा कि इस वर्ष उत्तर प्रदेश के दसवीं की बोर्ड परीक्षा में हिन्दी जैसे विषय में जो कि उत्तर प्रदेश की मातृभाषा है, उसमें आठ लाख बच्चे अनुत्तीर्ण हुए हैं। यह घटना समस्त हिन्दी प्रेमियों के लिए चिंता का विषय है। यह उन सभी लोगों के लिए एक सबक है जो विभिन्न मंचों पर जाकर कहते हैं कि हिन्दी फल-फूल रही है, हिन्दी विश्व पटल पर फैल रही है । पिछले वर्ष दस लाख बच्चे हिन्दी विषय में अनुत्तीर्ण हुए थे तो यह सभी घटनाएँ हमें एक बार सोचने को मजबूर करती हैं कि हमसे चूक कहाँ हो रही है ? क्या हम भाषा शिक्षक अपने शिक्षण को गंभीरता से नहीं ले रहे ? क्या शिक्षक, विद्यार्थी और विद्यालय प्रशासन सभी अपनी भाषा के प्रति लापरवाही कर रहें है?, सभी भाषा को लेकर उदासीन हैं? क्या पाठ्यक्रम में कोई कमी रह गयी है?, क्या शिक्षण प्रणाली में कहीं कोई खोट है? ऐसे बहुत सारे सवाल खड़े होते हैं। भाषा के संरक्षण में एक भाषा शिक्षक की क्या भूमिका होनी चाहिए ? भाषा संरक्षण की जिम्मेदारी जब शिक्षक पर आती है तो उसको क्या करना चाहिए और उसका व्यवहार कैसा होना चाहिए ? जब हम एक शिक्षक के नजरिये से भाषा संरक्षण की बात करते हैं तो यह भी देखना होगा कि वो भाषा का शिक्षण कैसे करता है ? जब आप भाषा शिक्षण से जुड़ते हैं तभी आप भाषा संरक्षण की बात कर सकते हैं । लेकिन ज्यादातर हमारे भाषा शिक्षक चाहे वे विद्यालय स्तर पर हों या विश्वविद्यालय स्तर पर हों, वह शिक्षक वर्ग भाषा शिक्षण से

तो जुड़ा हुआ है, लेकिन भाषाओं के संरक्षण से नहीं जुड़ा है। भाषा संरक्षण की बात दूर-दूर तक उनकी चिंता में नहीं पाई जाती है । उनकी चिंता इतनी है कि कैसे पाठ्यक्रम को पूरा किया जाये? हमें कितने साल भाषा की अध्यापिकी करनी है? हमें वेतन मिल ही जाता है, हम केवल अध्यापक ही बने रहेंगे चाहे भाषा बचे या ना बचे, उससे हमारा कोई सरोकार नहीं। यदि इस मनोवृत्ति से आप भाषा शिक्षण कर रहें हैं तो निश्चित तौर पर आप यांत्रिक रूप से भाषा शिक्षण कर रहें हैं जो आपके विद्यार्थियों में भाषा के प्रति लगाव व प्रेम को जागृत नहीं करते । बहुत से हमारे शिक्षक और विद्यार्थी यह मानते हैं कि जो भाषा हम अपने व्यवहार में प्रयोग करते हैं, घर-परिवार में बोलते हैं उसे सीखने की क्या जरूरत है? क्यों हम मुहावरों को पढ़ें? क्यों भाषा अनुशासन और व्याकरण पढ़ें? यदि हम इस तरह से भाषा के प्रति दृष्टिकोण रखते हैं तो हमें भाषा संरक्षण के विषय में गंभीरता से चिंतन करना होगा। जब तक बच्चों में अपनी भाषा के लिए स्वरुचि जागृत नहीं होगी तब तक वे गंभीरता से उसका अध्ययन नहीं करेंगे।

शिक्षकों की यह जिम्मेदारी होनी चाहिए कि वे बच्चों को बताएं कि हम केवल कविता, कहानियाँ या साहित्य का ही अध्यापन नहीं कराते बल्कि संस्कार भी देते हैं । शिक्षकों को भाषा के संरक्षण के लिए आगे आना होगा और रचनात्मक भूमिका निभानी होगी चाहे वो भाषा का व्याकरण पक्ष हो, वर्तनी हो या अन्य सृजनात्मक गतिविधियां हो । वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग के अध्यक्ष श्री अवनीश कुमार ने कहा कि साहित्य से हमारी भाषाएँ समृद्ध होती हैं किन्तु यह देखना होगा कि हमारी भाषाओं में कितना तकनीकी साहित्य और वैज्ञानिक साहित्य लिखा जा रहा है तथा कितना अन्य भाषाओं का अनुवाद हमारी भाषाओं में हो रहा है और हमारी भाषाओं का अनुवाद अन्य भाषाओं में हो रहा है। जब तक हम अपनी भाषाओं को तकनीक और विज्ञान से नहीं जोड़ते, हम भाषाओं के संरक्षण में पीछे रह जाएंगे। इसी तरह साहित्य एवं मीडिया से लम्बे समय से जुड़े तथा ऑल इंडिया रेडियो, राँची में कार्यरत श्री सुनील बादल ने संथाली भाषा की वर्तमान स्थिति के बारे में बहुत ही गंभीर मुद्दे को उठाया। संगोष्ठी का संचालन श्रीमती सोनिया अरोड़ा, श्रीमती शकुन्तला मित्तल एवं श्रीमती अंजु रोहिल्ला द्वारा संयुक्त रूप से किया गया। इस अवसर पर पत्रिका के संयुक्त संपादक श्री राजकुमार श्रेष्ठ, प्रबंध संपादक श्री विजय कुमार शर्मा, श्री भूपेन्द्र सेठी एवं बड़ी संख्या में शिक्षक प्रकोष्ठ के सदस्य उपस्थित थे । धन्यवाद ज्ञापन पत्रिका की परामर्श संपादक श्रीमती सुरेखा शर्मा ने किया ।

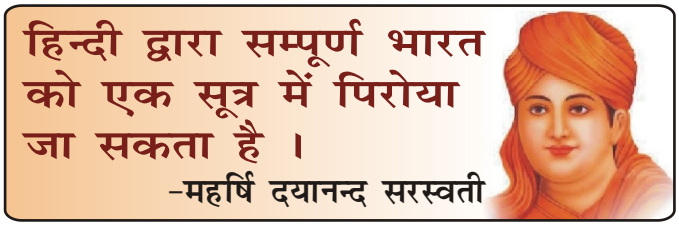

रिपोर्ट

एक दिवसीय राष्ट्रीय वेब संगोष्ठी-बुंदेली भाषा, साहित्य, संस्कृति एवं लोक-कलाएँ

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी, दिल्ली एवं बुंदेलखंड साहित्य महोत्सव समिति, झाँसी के संयुक्त तत्वावधान में रविवार, 19 जुलाई, 2020 को एक दिवसीय राष्ट्रीय वेब संगोष्ठी, 'बुंदेली भाषा, साहित्य, संस्कृति एवं लोक-कलाएँ' का आयोजन सम्पन्न किया गया। इस आयोजन को विभिन्न विषय समेटे पाँच सत्रों में आयोजित किया गया। हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के अध्यक्ष श्री सुधाकर पाठक के स्वागत वक्तव्य के साथ आयोजन का शुभारंभ किया गया।

इस आयोजन की परिकल्पना और उद्देश्यों के सम्बन्ध में उन्होंने बताया कि हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी हिन्दी सहित सभी भारतीय भाषाओं के संरक्षण, संवर्धन और प्रचार-प्रसार के लिए जमीनी स्तर पर कार्य करती है। अकादमी विभिन्न आयोजनों, कार्यशालाओं, संगोष्ठियों, परिचर्चाओं, व्याख्यान मालाओं एवं सम्मान समारोहों के माध्यम से भारतीय भाषाओँ के उन्नयन के लिए कार्य करती है। अकादमी की त्रैमासिक पत्रिका 'हिन्दुस्तानी भाषा भारती' के प्रत्येक अंक में किसी एक भारतीय भाषा को विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया जाता है। सभी भारतीय भाषाओं की गतिविधियों, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक आयोजनों को गति देने तथा उनके संरक्षण, संवर्धन और प्रचार-प्रसार के दायित्व बोध के निर्वहन को केंद्र में रखते हुए अकादमी अपनी महत्वकांक्षी योजना के तहत तीन दिवसीय बुंदेली सांस्कृतिक महोत्सव का आयोजन इस वर्ष दिल्ली प्रदेश में करना चाह रही थी जिसकी पूर्व तैयारी भी शुरू की जा चुकी थी।

इसी तरह क्रमबद्ध योजनानुसार अन्य आँचलिक भाषाओं एवं बोलियों के कार्यक्रमों को भी आयोजित करने की रूपरेखा बनाई गयी थी, किन्तु इसी बीच वैश्विक महामारी कोरोना के कारण इसे स्थगित करना पड़ा। बुंदेलखंड उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश के वृहत क्षेत्र में फैला हुआ है। इसके अलावा बड़ी संख्या में बुंदेली भाषी देश के अन्य भागों में भी रहते हैं। रोजगार, शिक्षार्जन, व्यापार-व्यवसाय, आर्थिक एवं अन्य सामाजिक कारणों से दिल्ली प्रदेश में भी बड़ी संख्या में बुंदेली भाषी लोग रहते हैं। पिछले वर्ष बुंदेलखंड साहित्य महोत्सव समिति ने झाँसी में तीन दिवसीय भव्य आयोजन किया था जिसकी अनुगूँज दूर-दूर तक पहुँची थी। इस तालाबंदी के समय का सदुपयोग करते हुए अकादमी ने यह निर्णय लिया कि युवाओं के समूह के साथ मिलकर एक राष्ट्रीय स्तर पर वेब संगोष्ठी की जाए जिसका सकारात्मक संदेश पूरे बुंदेलखंड, दिल्ली प्रदेश और अन्य महानगरों तक पहुँचे। उन्होंने विशेष जोर देते हुए कहा कि आज का यह एक दिवसीय वेब संगोष्ठी दिल्ली प्रदेश और बुंदेलखंड क्षेत्र में होने वाली तीन दिवसीय बुंदेलखंड साहित्य महोत्सव की नींव है। सामान्यत: हम अपनी पुरानी पीढ़ी से तो अपनी भाषा में बात करते हैं किन्तु अपनी नई पीढ़ी से अपनी भाषा पर बात नहीं करते जिससे हमारे बच्चे अपनी क्षेत्रीय भाषा, साहित्य, कला एवं संस्कृति से कट रहे हैं।

डॉ. वनीता शर्मा

इसका दूरगामी परिणाम यह होगा कि हमारी क्षेत्रीय बोलियाँ एवं भाषाएँ संकटग्रस्त भाषाओं की सूची में चली जाएंगी और कालांतर में इनका अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा, अत: इन स्थितियों से बचने के लिए भी क्षेत्रीय भाषाओं का संरक्षण, संवर्धन और प्रचार-प्रसार किया जाना अत्यावश्यक है। जब तक किसी भी आयोजन में युवाओं की भागीदारी ना हो, वो आयोजन सफल नहीं माना जाता। युवा वर्ग

हमारा भविष्य है, हमारी भाषाओं के ध्वज वाहक हैं । जब हम अपनी भाषा, कला, साहित्य एवं संस्कृति को युवाओं को हस्तांतरित करेंगे तभी हम इनका उचित संरक्षण, संवर्धन एवं प्रचार-प्रसार कर पाएंगे ।

इस आयोजन का मुख्य उद्देश्य ही युवाओं को अपनी भाषाओं, बोलियों, साहित्य, संस्कृति एवं लोक-कलाओं से जोड़ना है। प्रथम सत्र के विशिष्ट वक्ताओं के रूप में हिन्दी अकादमी, दिल्ली की पूर्व उपाध्यक्ष एवं प्रतिष्ठित साहित्यकार आदरणीया श्रीमती मैत्रेयी पुष्पा, डॉ. के.बी.एल. पाण्डे एवं श्री बहादुर सिंह परमार उपस्थित थे। इस सत्र का विषय बुंदेली भाषा, साहित्य एवं संस्कृति : एक विमर्श था जिसका संचालन अकादमी के अध्यक्ष श्री सुधाकर पाठक ने किया और धन्यवाद ज्ञापन हिन्दुस्तानी भाषा भारती पत्रिका के संयुक संपादक श्री राजकुमार श्रेष्ठ ने किया। द्वितीय सत्र का विषय भी पूर्ववत था जिसमें विशिष्ट वक्ताओं के रूप में लेखक एवं कथाकार श्री विवेक मिश्र, साहित्यकार सुश्री कीर्ति दीक्षित, सुश्री अंकिता जैन एवं श्री महेन्द्र कुमार तिवारी उपस्थित थे जिसका संचालन बुंदेलखंड साहित्य महोत्सव समिति की ओर से श्री अंशुल अग्रहरि ने किया तथा धन्यवाद ज्ञापन हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी की उप संपादक सुश्री सोनिया अरोड़ा ने किया। इसी तरह तृतीय सत्र के विशिष्ट वक्ताओं में श्री आशीष सागर, श्री अरिंदम घोष, श्री लक्ष्मी नारायण एवं श्री जीशान अख्तर उपस्थित थे जिसका विषय था- बुंदेलखंड में मीडिया की भूमिका। इस सत्र का संचालन बुंदेलखंड साहित्य महोत्सव समिति की ओर से श्री रोहित गुप्ता ने किया तथा धन्यवाद ज्ञापन हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी की सलाहकार श्रीमती सुरेखा शर्मा ने किया। चतुर्थ सत्र का विषय था- बुंदेली सिनेमा, रंगमंच एवं लोक-नाट्य : चुनौतियाँ एवं संभावनाएं । इस सत्र में विशिष्ट वक्ताओं के रूप में अकबर व आजम कादरी, किशोर श्रीवास्तव, विनोद मिश्र 'सुरमनी', आरिफ शहडोली, सुश्री गीतिका वेदिका एवं मु. नईम उपस्थित थे।

इस सत्र का संचालन बुंदेलखंड साहित्य महोत्सव समिति की ओर से श्री अभिनव ने किया तथा धन्यवाद ज्ञापन हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के प्रबंध संपादक श्री विजय कुमार शर्मा ने किया। इसी कड़ी में अंतिम सत्र के विशिष्ट वक्ताओं के रूप में डॉ. प्रदीप जैन, डॉ. चित्रगुप्त, डॉ. मनोज जैन एवं डॉ. अनिल अविश्रांत उपस्थित थे। इस पंचम सत्र का विषय था, बुंदेलखंड में पर्यटन- समस्याएं, संभावनाएं एवं सरकार की भूमिका, जिसका संचालन बुंदेलखंड साहित्य महोत्सव समिति की ओर से श्री आशुतोष ने किया तो वहीं धन्यवाद ज्ञापन एवं समापन बुंदेलखंड साहित्य महोत्सव समिति के अध्यक्ष श्री प्रताप गीताराज ने किया। बुंदेली भाषा, साहित्य, संस्कृति एवं लोक-कलाओं के संरक्षण, संवर्धन और प्रचार-प्रसार के लिए यह एक महत्वपूर्ण आयोजन था जिसमें विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों, विद्वान वक्ताओं ने सकारात्मक एवं ओजस्वी मंतव्यों द्वारा बुंदेलखंड क्षेत्र के बारे में गहन विषयों को उठाया और वहाँ की समस्याओं, चुनौतियों एवं अपार संभावनाओं को तार्किक, शोधपूर्ण एवं विश्लेषणात्मक रूप से प्रस्तुत किया।

रिपोर्ट

वैश्विक वेबीनार : 'भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन: दशा और दिशा'

विज्ञान प्रचार-प्रसार, वैश्विक हिन्दी सम्मेलन, हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के संयुक्त तत्वावधान में हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन पर एक वैश्विक वेबीनार का आयोजन किया गया। विज्ञान लेखन आज समय की सबसे बड़ी जरूरत है। अंग्रेजी और दूसरी विदेशी भाषाओं में तो वैज्ञानिक चिंतन को लेकर काफी कुछ पढ़ने को मिल जाता है लेकिन हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में इसका जबरदस्त अभाव है जिसकी वजह से दूर-दराज के गांव और कस्बे में बैठे लोगों के साथ ही महानगरों में बैठे लोग भी समय सापेक्ष जानकारियों से वंचित रह जाते हैं।

इस वेबीनार में विज्ञान के जाने-माने हस्ताक्षर श्री देवेंद्र मेवाड़ी ने विज्ञान को लेकर जो कुछ कहा उस में बहुत सी बातें सभी के लिए एकदम नई थीं। उनका यह कहना था कि जिस प्रकार एक वैज्ञानिक, वैज्ञानिक होते हुए भी ललित साहित्य लिख सकता है ठीक उसी प्रकार कोई साहित्यकार, चिंतक, लेखक तर्कशील बुद्धि पर तथ्यों का प्रयोग करते हुए विज्ञान लेखन कर सकता है। उन्होंने देश के कई बड़े साहित्यकारों के द्वारा विज्ञान लेखन की जानकारी भी दी। ज्ञात हो कि श्री मेवाड़ी न केवल एक विज्ञान लेखक हैं बल्कि विज्ञान के साथ ही साहित्य और सामाजिक विषयों पर भी उनकी दृष्टि बहुत पैनी और साफ भी है। विज्ञान लेखन के साथ ही मेवाड़ी अपने जीवन के चार से ज्यादा दशक तक बैंक में भी कार्यरत रहे हैं, इसलिए समाज से जुड़े तमाम मुद्दों पर उनकी पकड़ तेज और साफ है। इस वेबीनार में श्री मेवाड़ी ने अपने जीवन के इन्हीं अनुभवों के आधार पर इस विषय को एकदम अलग और सर्वथा नए सन्दर्भों की एकदम साफ और तर्क आधारित व्याख्या भी की । उन्होंने देश के कई बड़े साहित्यकारों के द्वारा विज्ञान लेखन की जानकारी भी दी ।

श्री मेवाड़ी के अलावा, इस वेबीनार में वरिष्ठ विज्ञान पत्रकार श्री प्रमोद भार्गव ने भी हिस्सा लिया। श्री भार्गव मूलत: वैज्ञानिक नहीं हैं लेकिन उन्हें विज्ञान के प्रति दिलचस्पी के चलते ही बचपन से विज्ञान की पुस्तकें पढ़ने का शौक था। यही शौक बाद में विज्ञान लेखन में बदल गया । उनके अनुसार यही वजह है कि आज वैज्ञानिक न होते हुए भी विभिन्न वैज्ञानिक विषयों पर उनके लेख देश भर के विभिन्न समाचार-पत्रों में निरंतर प्रकाशित होते हैं और ऐसे ही कई विषयों पर उनकी पुस्तकें भी आ चुकी हैं। सोशल मीडिया पर विज्ञान प्रचार-प्रसार के अंतर्गत विविध सामग्री प्रस्तुत कर रहे श्री राहुल खटे की इस वेबीनार के आयोजन में प्रमुख भूमिका रही। इस आयोजन में विभिन्न क्षेत्रों के अनेक महत्वपूर्ण लोग उपस्थित रहे। डॉ. एम.एल. गुप्ता 'आदित्य' ने बताया कि वैश्विक हिन्दी सम्मेलन के माध्यम से किस प्रकार वैज्ञानिक साहित्य की जानकारी विद्यार्थियों और विश्वविद्यालयों तक पहुंचाई जा सकती है । हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के अध्यक्ष श्री सुधाकर पाठक ने उनकी संस्था के माध्यम से हिन्दी के शिक्षकों और विद्यार्थियों के लिए किए जा रहे देशव्यापी प्रयासों की जानकारी दी, साथ ही संस्था के माध्यम से गठित भारतीय भाषाओं के संगठन 'शिक्षक प्रकोष्ठ' के विषय में भी बताया, जिसमें लगभग 600 शिक्षक जुड़े हुए हैं। उन्होंने जानकारी दी कि अकादमी एक त्रैमासिक पत्रिका 'हिन्दुस्तानी भाषा भारती' का नियमित प्रकाशित कर रही है जिसका प्रत्येक अंक किसी एक भारतीय भाषा का विशेषांक होता है। पत्रिका में हिन्दी सहित सभी भारतीय भाषाओं के लेख प्रकाशित होते है। श्री सुधाकर पाठक ने बताया कि अकादमी शीघ्र ही भाषा शिक्षकों के साथ-साथ अब विद्यालय स्तर के विज्ञान विषय के शिक्षकों को भी अकादमी की गतिविधियों में सम्मिलित करने जा रही है, जिससे भारतीय भाषाओं में विज्ञान के पठन-पाठन पर कार्य किया जा सकेगा। अपनी तरह के इस विशिष्ट आयोजन को देश भर से महत्वपूर्ण प्रतिसाद मिला।

सुषमा भण्डारी

रिपोर्ट

वेब संगोष्ठी : 'नई शिक्षा नीति : एक विमर्श'

पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज, हिन्दी विभाग, वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग, भारत सरकार तथा हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के संयुक्त तत्वावधान में रविवार, 9 अगस्त, 2020 को 'नई शिक्षा नीति : एक विमर्श' विषय पर ई-गोष्ठी आयोजित की गई । इस आयोजन में मुख्य अतिथि के रूप में वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग के अध्यक्ष श्री अवनीश कुमार जी उपस्थित थे । विशिष्ट वक्ताओं के रूप में श्री कृष्ण कुमार यादव, निदेशक, डाक सेवाएँ, लखनऊ परिक्षेत्र, डॉ. रवि शर्मा, प्रवक्ता श्रीराम कॉलेज ऑफ कॉमर्स, डॉ. धनेश द्विवेदी, उप संपादक, गृह मंत्रालय उपस्थित थे । इस महत्वपूर्ण परिचर्चा की अध्यक्षता वरिष्ठ पत्रकार श्री राहुल देव जी ने की तो वहीं हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के अध्यक्ष श्री सुधाकर पाठक तथा पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज (सांध्य) के प्राचार्य डॉ. रवीन्द्र कुमार गुप्ता का सान्निध्य रहा । इस ई-परिचर्चा के लिए 2200 से अधिक शिक्षकों, शोधार्थियों, लेखकों, साहित्यकारों आदि ने पंजीकरण किए थे। जूम एप के माध्यम से 500 प्रतिभागी इस आयोजन में जुड़े जिसे यू-ट्यूब चैनल पर लाइव प्रसारण किया गया। सर्वप्रथम हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के अध्यक्ष श्री सुधाकर पाठक के द्वारा गोष्ठी को आयोजित करने का उद्देश्य स्पष्ट किया गया ।

विशिष्ट वक्ता के रूप में श्री कृष्ण कुमार यादव ने अपना वक्तव्य दिया जिसमें उन्होंने नई शिक्षा नीति में नयापन खोजते हुए बहुत से तथ्यो से अवगत कराया जिसमें 3 से 18 वर्ष तक शिक्षा का अधिकार, मल्टीपल एंट्री और एग्जिट जैसे शब्दों से परिचय कराया । लेकिन इसके साथ-साथ ही नीति के समक्ष चुनौतियों को स्पष्ट किया । संसाधनों की कमी नीति के सुचारू संचालन में बाधा साबित होगी इस पर भी ध्यान दिलाया । श्री राहुल देव ने अपने अध्यक्षीय भाषण में नई शिक्षा नीति में नयापन होने की बात कही । साथ ही यह भी ध्यान दिलाया कि शिक्षा नीति में हिन्दी भाषा को राष्ट्र भाषा बनाने पर कहीं भी जोर नहीं दिया गया है । इसके साथ ही इस तथ्य को भी उन्होंने स्पष्ट किया कि भारतीय जनता पार्टी पर शिक्षा के भगवाकरण का आरोप लगाया जाता रहा है किंतु इस शिक्षा नीति में इसका खण्डन देखा जा सकता है ।

श्री राहुल देव द्वारा आशंका जताई गई कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा ना बनाया जाना और हिन्दी को 12वीं कक्षा तक अनिवार्य ना बनाया जाना निजी विद्यालयों का दबाब भी हो सकता है क्योंकि सरकार निजी विद्यालयों को कुछ कहने की स्थिति में स्वयं को अभी भी नहीं पाती । श्री अवनीश कुमार ने एक पीपीटी के माध्यम से बहुत ही सुंदर तरीके से नई शिक्षा नीति के सभी पहलुओं को विस्तार से समझाया । डॉ. रवि शर्मा द्वारा स्पष्ट किया गया कि शिक्षा नीति में पुस्तकालयों को हर स्तर पर (जिला स्तर हो या क्षेत्रीय स्तर) पुस्तकालय खोले जाने की व्यवस्था एवं राष्ट्रीय शोध प्रतिष्ठान खोले जाने पर भी नई शिक्षा नीति में जोर दिया गया है, इस पर सब का ध्यान दिलाया । डॉ. धनेश द्विवेदी ने भी नई शिक्षा नीति का स्वागत करते हुए बताया कि कोई भी बालक इस मात्र 22 संवैधानिक भाषाओं में से ही नहीं बल्कि अपनी मातृभाषा में भी शिक्षा ग्रहण कर सकेगा क्योंकि यह वैज्ञानिक सत्य है कि कोई भी बालक जितना अच्छे से अपनी मातृभाषा में समझ सकता है किसी अन्य भाषा में नहीं । अंत में डॉक्टर सोनिया अरोड़ा के द्वारा धन्यवाद दिया गया और पीजीडीएवी विद्यालय के प्रधानाचार्य द्वारा धन्यवाद देते हुए कार्यक्रम की समाप्ति की घोषणा की गई । कार्यक्रम में पंजीकृत सभी प्रतिभागियों को सहभागिता प्रमाणपत्र दिया जाएगा । हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के पदाधिकारियों में सर्व श्री विजय शर्मा, राजकुमार श्रेष्ठ, श्रीमती सुरेखा शर्मा, श्रीमती सोनिया अरोड़ा, श्रीमती शकुंतला मित्तल, श्रीमती सरिता गुप्ता आदि विशेष रूप से उपस्थित थे।

डॉ. सोनिया अरोड़ा

रिपोर्ट

ई-परिचर्चा :

नई शिक्षा नीति : विद्यालय स्तर पर भारतीय भाषाओं की दिशा व दशा

किसी भी देश की उन्नति या अवनति उस देश की शिक्षा नीति पर आधारित होती है । शिक्षा नीति एक ऐसी आधारभूत संरचना है जिसकी नींव पर देश के अन्य संसाधन, स्रोत एवं शक्ति निहित होती है। शिक्षा नीति ही देश की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामरिक आदि विकास को प्रभावित करती है । शिक्षा जैसे महत्त्वपूर्ण विषय पर जब देश की राष्ट्रीय नीति की अवधारणा बनकर आती है तो उस पर चर्चा करना आवश्यक हो जाता है क्योंकि शिक्षा नीति ही व्यक्ति, समाज और देश के सर्वांगीण विकास को निर्देशित करती है । विशेषज्ञों के अनुसार 10-15 वर्षों के भीतर शिक्षा नीति पर परिवर्तन होता रहना चाहिए किन्तु भारत के सन्दर्भ में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से अब तक देश में तीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति आयी हैं । सबसे पहले सन् 1968 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति आयी फिर उसके बाद सन् 1986 में आयी जिसे सन् 1992 में संशोधित भी किया गया । हाल ही में 34 वर्षों के बाद नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति आयी है जिस पर समाज के विभिन्न वर्गों, विभिन्न संस्थाओं, विद्यालयों, विश्वविद्यालयों द्वारा खूब चर्चा-परिचर्चा की जा रही है ।

इस शिक्षा नीति में विद्यालयी स्तर पर भारतीय भाषाओं को विशेष महत्त्व दिए जाने की बात जोरों पर है । इसलिए इस शिक्षा नीति में विद्वानों, भाषाविदों, शिक्षाविदों, पत्रकारों, साहित्यकारों, शिक्षकों, प्राचार्यों, विद्यार्थियों, शोधार्थियों, मीडियाकर्मियों एवं विभिन्न भाषा सेवी संस्थाओं का ध्यान आकृष्ट हुआ है । हालांकि इस शिक्षा नीति में प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा देने का प्रावधान बिलकुल नया नहीं है, यह भी पिछली शिक्षा नीतियों की ही पुनरावृत्ति है । लेकिन कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण बिन्दु भी हैं जो इस शिक्षा नीति में नए रूप में उभर कर आये हैं । सरकार द्वारा सभी भारतीय भाषाओं के संरक्षण, विकास और उन्हें मजबूत बनाने के लिए अब विद्यालयी शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक भारतीय भाषाओं को शामिल किए जाने की सिफारिश की गयी है । इसके साथ ही सभी भारतीय और प्राकृत भाषाओं के लिए एक राष्ट्रीय संस्थान, भारतीय अनुवाद एवं व्याख्यान संस्थान की स्थापना करने की बात की गयी है । विद्यालयी शिक्षा में त्रिभाषा सूत्र को लागू किया जाएगा । इसमें संस्कृत के साथ तीन अन्य भारतीय भाषाओं का विकल्प भी होगा । विदेशी भाषाओं की शिक्षा माध्यमिक स्तर से होगी । नई शिक्षा नीति में यह भी कहा गया है कि किसी पर कोई भी भाषा थोपी नहीं जाएगी । इन्हीं समसामयिक मुद्दों पर विस्तृत रूप से चर्चा करने के लिए लेखक एवं सामाजिक विश्लेषक श्री रवि शुक्ला द्वारा रविवार, 16 अगस्त, 2020 को हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के अध्यक्ष श्री सुधाकर पाठक एवं अकादमी के अन्य पदाधिकारियों से 'नई शिक्षा नीति : विद्यालय स्तर पर भारतीय भाषाओं की दिशा व दशा' विषय पर एक ई-परिचर्चा का आयोजन किया गया । नई शिक्षा नीति में जो भारतीय भाषाओं को अधिक महत्त्व दिए जाने की बात की गयी है, क्या यह प्रावधान अब तक की भारतीय शिक्षा में चली आ रही अंग्रेजी के वर्चस्व को विस्थापित कर पाएगी ? इस सवाल के प्रत्युत्तर में आकादमी के अध्यक्ष श्री सुधाकर पाठक ने बताया कि हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी नई शिक्षा नीति के प्राथमिक स्तर पर बच्चों को उनकी स्थानीय/क्षेत्रीय या मातृभाषा में शिक्षा देने के प्रावधान के प्रति आशान्वित है किन्तु अभी यह नीति केवल कागजी प्रावधान है; जब इसे कानूनी रूप दे दिया जाएगा तब एक भाषा सेवी संस्था होने के नाते हम इस पर अधिक गौरवान्वित होंगे । हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी अपने विभिन्न आयोजनों के माध्यम से लगातार इस विषय को उठाती आ रही है कि बच्चों को उनकी मातृभाषा में शिक्षा दी जानी चाहिए । वैज्ञानिक अनुसंधानों से भी इस बात की पुष्टि हो चुकी है कि बच्चा अपनी मातृभाषा में विषय को बहुत तेजी से सिखाता है । इस महत्त्वपूर्ण ई-परिचर्चा में अकादमी के पदाधिकारियों में विशेष रूप से 'हिन्दुस्तानी भाषा भारती' त्रैमासिक पत्रिका के प्रबंध संपादक, श्री विजय शर्मा, संयुक्त संपादक, श्री राजकुमार श्रेष्ठ, कथाकार एवं परामर्श संपादक, श्रीमती सुरेखा शर्मा, उप संपादक, श्रीमती सोनिया अरोड़ा, सम्पादकीय सलाहकार, डॉ. वनिता शर्मा और पत्रकार एवं उप संपादक, श्री पुलकित खन्ना उपस्थित थे । इस परिचर्चा को यू-ट्यूब सहित विभिन्न सोसल मीडिया के माध्यमों में लाइव टेलीकास्ट किया गया, जहाँ कई सौ लोगों ने अपनी-अपनी जिज्ञासाओं एवं आशंकाओं को रखा । इस ई-परिचर्चा का कुशल संयोजन श्री रवि शुक्ला ने किया जहाँ उन्होंने बहुत ही गंभीर प्रश्नों को रखा। यह इस तरह का पहला आयोजन था जहाँ केवल अकादमी के पदाधिकारियों को सम्मिलित किया गया तथा नई शिक्षा नीति के विभिन्न पक्षों पर सभी पदाधिकारियों ने अपने स्पष्ट और सारगर्भित विचार रखे ।

सरोज शर्मा

चमत्कार लोक भाषाओं का

तमिल भाषा, साहित्य, संस्कृति और वर्तमान स्थिति

डॉ. जमुना कृष्णराज

हर भाषा एक वट वृक्ष की भाँति है। उसके शब्द भंडार पेड़ के पत्तों की भाँति हैं, जो समय के साथ-साथ झड़ते हैं और नए पत्ते निकल आते हैं। भाषा का विकसित रूप ही साहित्य है। भाषा अगर शरीर है तो साहित्य आत्मा है। साहित्य ही किसी भाषा को अमरत्व प्रदान करने में सक्षम होता है। साहित्य मानव जीवन को समृद्ध करने की क्षमता से युक्त है। साहित्य के बिना जीवन नीरस और स्फूर्तिहीन बन जाता है।

तमिल भाषा: भारत की प्राचीन भाषाओं में तमिल का महत्वपूर्ण स्थान है जो संस्कृत के समान ही अत्यंत प्राचीन और साहित्य समृद्ध है। माना जाता है कि आर्यों के भारत आगमन के पहले ही आद्य द्रविड़ भाषा भारत में व्याप्त थी। ऋग्वेद में भी अनेक द्रविड़ भाषा के शब्द पाए जाते हैं। आद्य द्रविड़ भाषा को ही आधुनिक तमिल भाषा का स्रोत माना जाता है। यजुर्वेद में भी द्रमिलम शब्द प्रयुक्त है जो कालांतर में द्रविडम, तमिलम और तमिल में परिवर्तित हुआ। अत: दक्षिण भारत में द्रविड़ प्रजाति की जो अलग सभ्यता और संस्कृति पनप रही थी, उनकी भाषा तमिल रही है। तमिल भाषा के प्रति डॉ. विन्स्लो का कहना है। "It is not perhaps extravagant to say that in its poetic form Tamil is more polished and exact than Greek and both the dialects with its borrowed treasures, more copious than Latin. In its fullness and power it more resembles English and German than any other living languages."

तमिल के सर्वप्रथम व्याकरणशास्त्र की रचना करनेवाले ऋषि अगस्त्य ने अपने व्याकरण शास्त्र 'अगत्तियम' में त्रिविधा तमिल का उल्लेख किया है और यह ग्रंथ लगभग पांच सहस्र वर्ष पूर्व रचा गया। किंतु तमिल भाषा और उसके उद्भव काल का निर्णय करना कठिन है क्योंकि अनेक विषयों पर ग्रंथ काल कवलित हो चुके हैं और उनका उल्लेख मात्र है।

संगम काल: प्राचीन काल में तमिल साहित्य की श्रीवृद्धि तथा विकास के निमित्त तीन संघ निर्मित हुए। दक्षिण मदुरै ही पांड्य राजाओं की राजधानी थी और वहीं प्रथम तमिल संघ क्रियाशील रहा। दूसरा संघ कपाटपुरम में तथा तीसरा संघ वर्तमान मदुरै में आयोजित था । तमिल का प्राचीन संगमकालीन साहित्य कला का कोष है । 'पत्तुप्पाट्टु'-एट्टुत्तोगै'-ये ही संगमकालीन साहित्य कहलाते हैं। ये दोनों ही मुक्तक कविताओं के संकलन हैं। ये संगमकाल में रचे दीर्घगीत हैं। तमिल प्रदेश के प्राचीन काल के इतिहास की जानकारी के लिए ये पत्तुपाट्टु अत्यंत सहायक हैं, क्योंकि वे तद्युगीन जीवन को प्रतिबिंबित करते हैं। संगम कविताएँ 'अहम', 'पुरम' नामक दो वर्गीकरण के अंतर्गत लिखी गई हैं। लौकिक प्रेम एवं मानवीय संवेदनाओं को आधार बनाकर लिखी गई कविताएँ अहम वर्ग में तथा युद्ध, वीरता यश, दान आदि की चर्चा करने वाली कविताएँ पुरम वर्ग की कविताएँ मानी जाती हैं। संगमकाल में लगभग 270 कवियों द्वारा 2381 कविताएँ अर्थात् 20,000 पंक्तियाँ रची गई हैं, जिनमें अस्सी प्रतिशत अहम वर्ग की ही हैं। इन कविताओं के रचयिता राजा से लेकर वणिक, कारीगर, शिक्षक, स्वर्णकार, शिकारी, वैद्य, बढ़ई, ज्योतिषी, भाट, नर्तकी जैसे कई पेशों से संबंधित थे। इनमें तीस कवयित्रियाँ भी थीं।

तोलकाप्पियम: संप्रति उपलब्ध पुराकालीन ग्रंथ 'तोलकाप्पियम' एक लक्षण ग्रंथ है, जो कि ईस्वीं पूर्व आठवीं शताब्दी की रचना मानी जाती है। तमिल भाषा में 'तोल' का अर्थ प्राचीन और 'काप्पियम' का अर्थ साहित्य होता है। तोलकाप्पियम के रचनाकार का नाम तोलकाप्पियर पड़ा जिनका रचनाकाल ई.पू. 600 माना जाता है। वे संस्कृत के भी विद्वान थे। चूंकि इन्होंने अपने पूर्ववर्ती विद्वानों एवं कवियों का उल्लेख अपनी कृति में 287 स्थानों में किया है, पूर्ववर्ती तमिल प्रदेश में प्रचलित तमिल भाषा और उसके साहित्य की स्थिति का ज्ञान इससे प्राप्त होता है। समग्र ग्रंथ तीन खंडों में विभक्त है। प्रत्येक खंड में नौ अध्याय और कुल 27 अध्याय तथा 1660 सूत्रों में यह ग्रंथ विस्तार पाता है। तोलकाप्पियम का युग तमिल के इतिहास में स्वर्णयुग माना जाता है। इसका तीसरा खंड 'पोरुल अधिकारम' कहलाता है जिसमें तद्युगीन तमिलों की जीवन शैली, उनकी संस्कृति, सभ्यता, चिंतन प्रणाली के विरुद्ध चित्रण पाया जाता है। इस प्रकार तोलकाप्पियम पुराकालीन तमिल प्रदेश के जनजीवन का दर्पण है।

संगमकाल में समाज और जीवन शैली: तमिल लोग इस मिट्टी के पुत्र और मूल निवासी भी हैं। पेशे से वे गोपालक, आखेटक, कृषक और मछुआरे भी थे जहाँ राजा, अमात्य, नेता, शिक्षक, विद्वान, वणिक और योद्धा भी थे। जन्म से जाति की पहचान तमिल प्रदेश में नहीं रही। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, कृषक आदि लोगों से समाज गठित था। ब्राह्मण शिक्षित वेदपाठी थे और शिक्षा प्रदान करते थे। वे यज्ञ करते थे और राजा इनका खूब आदर करते थे। समाज की मूल इकाई परिवार मानी जाती थी, जहाँ परिवार को आनंद प्रदान करने वाले बाल-बच्चों तथा बंधु-बांधवों से घिरे रहने पर पति-पत्नी दोनों को संसार की भलाई के उत्तम कार्य में लग जाते थे। परिवार के बुजुर्गों और माता-पिता की सम्मति से ही विवाह संपन्न होता था। घर तथा समाज-दोनों जगहों पर नारी-पुरुष के साथ समान रूप से स्वतंत्रता और समानता का अनुभव करती थी।

खान-पान: लोग चावल के अलावा मांस, घी, दूध, दही और शहद भी खाते थे। लाल चावल से पकाया मिष्ठान और मोदक जैसे मीठा

पकवान भी खाते थे। ताड़ और नारियल के फलों से निकली देशी शराब के पान में उन्हें आनंद आता था। रोम से आई कुछ नारियाँ रोम से लाए मधुकलश में मधु भर-भरकर तमिलनाडु के राजाओं को पिलाती थीं, जिसका वर्णन तमिल के प्राचीन काव्य में प्राप्त है।

वेश-भूषा: प्राचीन तमिल बुने हुए महीन कपड़े पहनते थे। नारी ही नहीं, पुरुष भी सुंदर और कीमती आभूषण पहनते थे। मोती, हीरे या शंख की मालाएँ लोग पहनते थे।

पेशे और धंधों: कृषि, कपड़े बुनना, व्यापार, शहद का उत्पादन, शिकार, पहाड़ियों तथा समतल भूमि में धान, जौ, तिल, कंदमूल आदि विभिन्न वस्तुओं की खेती जैसे अनेक पेशों के साथ-साथ कुम्हार, चमार, सुनार, लोहार और दर्जी भी अपने-अपने धंधों के लिए प्रसिद्ध थे। काली मिर्च, काजू, इलाइची, चंदन की लकड़ियाँ, जड़ी-बूटियों का निर्यात होता था। तीन बंदरगाहों में जहाजी मार्ग से व्यापार होता था। रोमवासी मुक्ता, हाथी दांत, मसलिन कपड़ा, काली मिर्च, काजू आदि खरीद ले जाते थे और रोम से सोने-चाँदी से बने सिक्के और ऊँची किस्म की शराब तमिल प्रदेश में आयातीत होते थे। प्राचीन तमिल लोग जहाज बनाने में माहिर थे और समुद्री यात्रा कर संपत्ति कमाने में उनकी विशेष रुचि थी।

धर्म और दर्शन: तमिल जनता ईश्वरीय चेतना से भरपूर थी। संगम कालीन कृतियों में जहाँ धर्म, अर्थ और काम का उल्लेख है, वहीं मोक्ष का उल्लेख नहीं पाया जाता। तमिल भूमि पुष्पों के लिए प्रसिद्ध प्रदेश है। यहाँ पुष्पमाला, पुष्पगुच्छों आदि से लोगों का सम्मान करने की परिपाटी आज भी प्रचलित है। मंदिर की मूर्तियाँ जब शोभायात्रा पर निकलती थीं तो टोकरी भर-भरकर पुष्पों से अर्चना करने की प्रथा थी, जिसके दर्शन से लोग प्रफुल्लित होते थे।

राजनीति: पुरातनकालीन तमिल प्रदेश चेर, चोल और पांड्य राजाओं से शासित था। राजा जनहितैषी, सहिष्णु और प्रजावत्सल थे। लोक कल्याण उनका मुख्य उद्देश्य था। वे विद्वानों, कवियों और दार्शनिकों से परामर्श लेते थे। यह युग स्वर्ण युग माना जाता था, क्योंकि सभी राजा और क्षेत्रपाल कलाविदों, गायकों, कवियों एवं अन्य कलाकारों को उनकी गरीबी दूर करने के निमित्त मुक्त हाथ से दान करना अपना गौरव समझते थे। वे विद्वानों को हाथी, घोड़े, रथ,भूमि आदि भी दान में दिया करते थे। गीतकारों और नाट्य कलाकारों को स्वर्ण मालाएं और स्वर्ण मुद्राएं दान में देते थे।

तिरुक्कुरल: यह एक शीर्षस्थ काव्य माना जाता है जो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष-इन चतुर्दिक पुरुषार्थों को 1330 कुरल के माध्यम से स्पष्ट करता है। लगभग 1800 वर्षों के पूर्व रचित इस कृति की प्रशंसा आज भी अनेक धर्मावलंबी करते हैं। मानव प्रवृत्तियों का सूक्ष्म निरीक्षण एवं परिशीलन कर मात्र सत्य की स्पष्ट व्याख्या करना इस ग्रंथ की बड़ी विशेषता है। अलबर्ट स्वैट्शर नामक जर्मन दार्शनिक विद्वान ने इसे जीवन के लिए उत्तम मार्गदर्शक ग्रंथ, प्रेम धर्म पर जोर देने वाला तथा उच्चतम ज्ञान प्रदान करने वाला ग्रंथ बताकर इसे विश्व साहित्य में अनुपम ग्रंथ माना है।

तिरुवल्लुवर के अनुसार मनुष्य का आचरण ऊँचे लक्ष्य और आदर्श की प्राप्ति के लिए होना चाहिए। वे धर्माचरण पर दृढ़ आस्था रखने वाले कवि थे। उनके अनुसार आचरणहीन मनुष्य से कुल और धर्म का नष्ट होगा। अपने दूसरे अर्थात् अर्थ खंड में वे उत्तम सांसारिक जीवन मूल्यों के संबंध में स्पष्ट विचार व्यक्त करते हैं। उनके अनुसार बुराई को त्यागकर भलाई के मार्ग पर बुद्धि को चलाना ही वास्तविक ज्ञान कहलाता है।

राजनीति पर उनके विचार स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य हैं। अपने युग के शासकों के लिए उन्होंने जो उपदेश दिया, वे आज के जनतांत्रिक युग के नेताओं के लिए भी उपयुक्त लगते हैं। लोक समर्थन पाकर शासन करते राजाओं के चरणों पर संसार टिका रहेगा। इस प्रकार उनके विचार सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक बन गए हैं, जिसकी वजह से उनकी यह कृति कालजयी हो गई है। कवि सुब्रमण्य भारती ने कहा कि तमिलनाडु ने तिरुवल्लुवर को जन्म देकर जगत में अमर कीर्ति प्राप्त की है। अपने ग्रंथ में तिरुवल्लुवर ने विश्व के मानव मात्र के लिए उपयुक्त सर्वमान्य और सर्वकालीन विचारों की अभिव्यक्ति की है। तिरुक्कुरल एक नीति ग्रंथ होते हुए भी लौकिक जीवन से संबंधित नैतिक आदर्शों का ही प्रतिपादन करता है। अत: वास्तव में यह जीवन दर्शन का ही काव्य है।

सिलप्पदिकारम: प्राचीन द्रविड़ संस्कृति को उजागर करने वाला तमिल का प्रथम प्रबंध काव्य सिलप्पदिकारम है। इसके रचयिता इलंगो अडिगल चेर राज परिवार के सदस्य थे। वे एक श्रमण साधु थे जिन्होंने तमिल प्रदेश को समग्रता से समझकर अपनी प्रशंसा में काव्य की रचना की। सिलंबु अथवा नूपुर की कथा होने के कारण इसका नाम सिलप्पदिकारम हुआ। एक श्रमण संत होते हुए भी उन्होंने पारिवारिक जीवन की घटनाओं को बड़े मार्मिक ढंग से रस घोलते हुए सुंदर शब्द चित्रों से इस मनोरम काव्य का प्रणयन किया। काव्य का मुख्य रस करुण एवं वीर रस ही है। जगह-जगह पर आखेटक, अहीर, बंजारे आदि ग्रामीणों के लोकगीत नाटकीय शैली में प्रस्तुत है। अत: यह नाटक प्रधान प्रबंध काव्य माना जाता है। तमिल ही नहीं, द्रविड़ परिवार के चारों भाषाओं में भी यह सर्वप्रथम प्रबंध काव्य के रूप में समादृत है। अपनी साहित्यिक विशिष्टताओं तथा उपलब्धियों के कारण तमिल साहित्य में यह सर्वोत्तम काव्य कृति के रूप में मान्यता प्राप्त प्रबंध काव्य है। इसमें मानसिक तथा नैतिक बल और धीरता का चित्रण हुआ है। इस काव्य का मुख्य उद्देश्य राजनीति में अपराध करने वाले का धर्म ही प्राण हर लेगा। होनी होकर रहेगी, विधि की प्रबलता को कोई रोक नहीं सकता। इस काव्य में विभिन्न छंदों का प्रयोग हुआ है। यही नहीं, इसमें पद्य, गद्य और नाटक-तीनों विधाओं का सुंदर समावेश हुआ है। इस काव्य का फ्रेंच भाषा में भी अनुवाद हुआ है। तीस सर्गों से युक्त संपूर्ण काव्य में चार सर्ग जन सामान्य के लोकगीत, लोकनृत्य आदि से संबंधित हैं।

मछुआरों, आखेटकों, ग्वालिनों, पहाड़ियों के गीतों के अतिरिक्त कुंदक गीत, हिंडोले के गीत, धान कूटने के गीत, कृषकों के बीज बोने के गीत, उगाऊ गीत, फसल काटने के गीत भी शामिल हैं, जो कवि इलंगो की कलात्मक चेतना तथा लोकगीतों के प्रति उनकी सद्भावना का ही द्योतक है।

सिलप्पदिगारम और मणिमेकलै दोनों ही लगभग ई. सन् 800 के आसपास की कृतियाँ हैं। इसके शिल्प विधान में कवि ने पूर्वदीप्ति प्रकाश शैली, पत्रशैली, वर्णनात्मक शैली, संवाद शैली जैसे अनेक शैलियों का प्रयोग किया है। यह वास्तव में कला एवं संस्कृति का अक्षय भंडार है। इसे प्राचीन काल की द्रविड़ संस्कृति और सभ्यता का प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत करने वाला एकमात्र प्रतिनिधि काव्य मानना अनुचित न होगा।

मणिमेकलै: प्राचीन तमिल साहित्य के पांच महाकाव्यों में मणिमेकलै का दूसरा स्थान है। अन्य हैं-जीवक चिंतामणि, कुंडलकेशी और वलयापति। सिलप्पदिकारम और मणिमेकलै की कथाओं में आपसी संबंध होने के कारण इन दोनों को काव्यद्वय माना जाता है। मणिमेकलै में बौद्ध धर्म के मूल सिद्धांतों एवं धारणाओं की काव्यात्मक अभिव्यक्ति हुई है। इतना ही नहीं, यह शताब्दियों तक तमिल साहित्य प्रेमियों के आस्वादन का पात्र तथा उनके गर्व का आधार भी रहा है। इसके रचयिता का पूरा नाम मदुरै कूलवाणिकन चीत्तले चात्तनार है। समग्र काव्य में एक ही छंद का प्रयोग किया गया है। इसमें नारी की व्यथा कथा रूपायित है। साहित्य सौंदर्य की अपेक्षा बौद्ध धर्म की व्याख्या ही काव्य का प्रमुख उद्देश्य था पर कवि ने अन्य मतों की धारणाओं से अस्वीकृति के बावजूद उनका खंडन न कर अपनी धार्मिक सहिष्णुता और समधर्म भाव की दृष्टि का परिचय दिया है और काव्य की गरिमा को भी सुरक्षित रखा। इसका रचनाकाल चौथी और पाँचवीं शताब्दी माना जाता है। मणिमेकलै में मोक्ष या मुक्ति की खोज ही उसका चरम लक्ष्य है। भगवान बुद्ध के गुणों का वर्णन करते कवि नहीं अघाता। पारस्परिक प्रेम, दुखियों पर करुणा, स्वार्थ का त्याग, अपरिग्रह आदि बौद्ध धर्म के आदर्शों की स्थापना काव्य की मुख्य अंर्तधारा है। दर्शन की नींव पर निर्मित तमिल काव्य है मणिमेकलै। कवि सात्तनार ने भूख को जीवन का महारोग माना है। अत: इस मृण्मय जगत में जीने वाले सभी को भोजन देकर भूख मिटाना सच्चा धर्म है। हाथ में अमृत सुरभि लिए मणिमेकलै ने जो कहा है वह समस्त संसार के लिए एक महान संदेश है। विलासिता, मद्यपान, जाति-भेद, ऊँच-नीच का भेदभाव, चोरी हत्या, वैश्यावृत्ति आदि को वितृष्णा की दृष्टि से देखा गया है। प्राचीन तमिलों के सांस्कृतिक जीवन की झांकियाँ, कथा को आकर्षक परिवेश प्रदान करती हैं। कथा वंचीनगर और कांचीनगर में घटित होती है और इन स्थानों का विस्तृत विवरण इसमें प्राप्त है। इंद्रोत्सव, राजधर्म, विविध कलाएँ, पतिव्रत्य, तीर्थाटन, शव संस्कार की रीतियाँ, वैश्याओं का स्वभाव, उनकी त्रुटियों के लिए दिए जाने वाले दंड, गाय का महत्व, जाति प्रथा जैसे जीवन के विविध पहलुओं को न्यूनाधिक विस्तार से प्रस्तुत किया गया है। इनसे प्राचीन तमिल संस्कृति की एक झलक मिलती है। इस प्रकार अनेक दृष्टियों से यह महाकाव्य महत्वपूर्ण है।

भक्ति साहित्य: शिव भक्त नायनमार के 'तेवारम' और विष्णु भक्त आलवारों द्वारा गाए गए 'पासुरम' गीत ही आज प्रमुख भक्ति साहित्य के रूप में उपलब्ध हैं। सन् 300 से 1300 तक के पल्लव, पांड्य और चोल राज्यकाल में शैव धर्म का खूब प्रचार-प्रसार हुआ। शैव, वैष्णव भक्ति साहित्य का विकास इनके शासन काल में हुआ जब शैव धर्म की प्रमुख रचनाएँ-तेवारम, तिरुवाचकम और द्वादश तिरुमुरै ग्रंथ तथा वैष्णव संत आलवार का दिव्य प्रबंदम प्रकाश में आए। वैष्णव आलवारों के गीत 4000 हैं जबकि 63 नायनमारों के गीत संख्या 12000 हैं। इस प्रकार तमिल की देवभूमि में भक्ति कमल अद्भुत ढंग से विकसित हुआ। चोल राजाओं के काल में 3000 शिव मंदिर निर्मित हुए। शैव धर्म के सिद्धांतों और दार्शनिक ग्रंथों की रचना बारहवीं सदी से होने लगी। 'नान्मरै' यानि चार तमिल वेद शैवागम रचे गए। संबंदर, अप्पर, सुंदर, माणिक्क वाचकर कुछ प्रमुख नायनमार थे। उनके पूर्व तिरुमूलर भी एक शैव संत थे, जिनकी कृति तिरुमंदिरम तमिल शैव सिद्धांत का मूल बीज ग्रंथ है। इसके नौ खंड में तीन सहस्र गीतिकाएँ संकलित हैं जो शिव के प्रेम स्वरूप को स्थापित करती हैं। संबंदर ने शिव की स्तुति में 4158 पद गाए हैं। संबंदर ने सत्पुत्र मार्ग, अप्पर ने दास मार्ग, सुंदरर ने सखा मार्ग और माणिक्कवाचकर ने ज्ञान का सन्मार्ग ग्रहण किया। माणिक्कवाचकर के भक्ति गीतों का संकलन तिरुवाचकम 656 पद्यों की कृति है, जो 51 शीर्षकों में विभक्त हैं। इस कवि ने अपने भावों को कीर्तन गायन, विनयगीत, लीलागीत, शरणागति गीत, अनुग्रह गीत समर्पण गीत आदि शीर्षकों में विभक्त किया है। इसके अतिरिक्त कवि ने तिरुपल्लि एलुच्ची, तिरुवेण्पावै, तिरुचालल आदि भक्ति परक रचनाओं का सृजन किया है। तमिल शैव भक्ति साहित्य में माणिक्कवाचकर एक जाज्वल्यमान ज्योति स्तंभ के रूप में चिरकाल तक स्मरणीय रहेंगे।

कृष्ण भक्ति : इस पर द्वादश आलवारों द्वारा समय-समय पर गाए गए चार सहस्र पदावलियों के संग्रह का नाम 'नालायिर दिव्य प्रबंदम' है। इसमें वात्सल्य भाव और माधुर्य भाव पर विशेष बल दिया गया है, जहाँ कृष्ण और गोपियों का पारस्परिक प्रेम कृष्णभक्ति साहित्य का मेरुदंड है। नम्मालवार, तिरुमंगै आलवार, कुलशेकर आलवार और आंडाल की रचनाएँ माधुर्यभाव से ओतप्रोत है। आंडाल की 'तिरुप्पावै' और 'नाच्चियार तिरुमोलि', माधुर्य भाव की अद्वितीय उदाहरण पेश करती हैं। स्वप्न में माधव के साथ संपन्न अपने विवाह का अत्यंत मार्मिक ढंग से आंडाल नाचियार तिरुमोलि में वर्णन करती है।

सन् 1700-1765 काल में ऊत्तुक्काडु वेंकट कवि नामक कृष्ण भक्त ने श्री कृष्ण की बाल लीलाओं के अनेक गेय पद रचे जो आज भी संगीत के कार्यक्रमों में गाए जाते हैं। आधुनिक काल में राष्ट्रकवि सुब्रमण्य भारती ने कण्णन पाट्टु यानि कृष्ण गीत भी रचे हैं। उन्होंने इन गीतों द्वारा परमात्मा और जीवात्मा के अभिन्न संबंध को विभिन्न रूपों में दर्शाया है।

राम भक्ति साहित्य और कंब रामायण: रामायण के विविध कथा प्रसंगों का उल्लेख यद्यपि पुराकालीन संगम काव्य जैसे- परिपाड़ल, कलित्तोगै, सिलप्पदिगारम, पेरुमकदै आदि प्राचीन तमिल ग्रंथों में मिलते हैं, फिर भी रामकथा पर पहला व्यवस्थित और विस्तृत प्रयास महाकवि कंबन ने ही किया है। बारहवीं शताब्दी की इस रचना को पूर्ण करने में कवि को सात वर्ष लगे। कंब रामायण 10,500 पदों और 44,000 पंक्तियों का एक विशाल काव्य ग्रंथ है। इसमें कवि ने रामकथा को तमिल प्रदेश की संस्कृति के अनुकूल ढालकर अपने युगीन सामाजिक रीति-रिवाज़, रहन-सहन, आमोद-प्रमोद, प्रसाधन, लोक जीवन एवं लोक विश्वास आदि का सुंदर चित्रण किया है।

आधुनिक काल में तमिल साहित्य: भारत की आज़ादी के आंदोलन के दौरान वेदनायकम पिल्लै, सुब्रमण्य भारती, नामक्कल रामलिंगम पिल्लै, कविमणि देशिक विनायकम पिल्लै, शुद्धानंद भारती, भारती दासन, वाणी दासन प्रभृति कवियों ने

स्वरचित कविताओं के माध्यम से समाज में विशेषकर बुद्धिजीवियों के मन में नई चेतना तथा नवजागरण उत्पन्न करने का श्रेयस्कर कार्य किया। अनेक दृष्टियों से बीसवीं शताब्दी के तमिल साहित्य को विशेष विकास से युक्त स्वर्णकाल माना जा सकता है।

अठारह, उन्नीस शताब्दियों तक साहित्य में कविता का ही बोलबाला था। जब राजनीतिक क्षेत्र में गंभीर बदलाव आए, अनेक हिन्दू धार्मिक संस्थानों ने अपनी सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा के लिए अथक प्रयास किए। सन् 1815-1876 के समय तक मीनाक्षी सुंदरम पिल्लै नामक तमिल के एक प्रकांड पंडित ने 200,000 कविताओं की 80 किताबें लिखीं और उन्होंने सदियों से खोई हुई अमूल्य एवं प्राचीन तमिल साहित्यों को ढूंढ़ निकालने का कार्य उ.वे. स्वामिनाथ अय्यर को सौंपा जिन्होंने 90 किताबों का प्रकाशन किया।

गोपाल कृष्ण भारती नामक एक कवि ने उन्नीसवीं सदी के आरंभिक काल में अनेक गेय पद लिखे जो आज भी संगीतज्ञों द्वारा गाए जाते हैं। 'नंदनार चरित्रम्' उनकी प्रसिद्ध कृति है जो पेरियपुराणम या महापुराण पर आधारित है। रामलिंग अडिगलार (1823-74)ने तिरुवरुट्पा की रचना की और मरैमलै अडिगल (1876-1950) ने संस्कृत के प्रभाव से तमिल को मुक्त करने का प्रयास किया। इस समय के महान कवि थे सुब्रमण्य भारती जिन्होंने स्वतंत्रता और नारीवाद जैसे प्रगतिशील विषयों पर अपनी कविताएँ रचीं। भारतिदासन नामक कवि ने उनका अनुकरण किया।

19वीं सदी की तीसरी चौथाई के समय में तमिल सहित्य में उपन्यास का प्रवेश हुआ। वर्ष 1879 में मायवरम वेदनायकम पिल्लै ने अपना पहला उपन्यास 'प्रताप मुदलियार चरित्रम्' लिखा। 1893 में बी आर राजम अय्यर का 'कमलाम्बाम चरित्रम्' और 1893 में मादवैया का पद्मावती चरितम भी प्रकाशित हुए। 1940-1950 के समय में कल्कि कृष्णमूर्ति अपने ऐतिहासिक और सामाजिक उपन्यासों और 1950-1960 के समय में सांडिल्यन ने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर अनेक उपन्यास रचे।

आधुनिक तमिल साहित्य में डी. जयकांतन का नाम प्रमुख है। 1950 से छ: दशकों तक जयकांतन ने 40 उपन्यास, 200 कहानियाँ और दो आत्म कथाएँ लिखीं। उनके उपन्यास के नायक-नायिकाएँ रिक्शा वाले, कूड़ा-कर्कट बीनने वाले या वेश्याएँ भी थीं। 1950-60 में तमिलवानन के जासूसी उपन्यास भी खूब प्रसिद्ध थे। आधुनिक काल के अनेक तमिल लेखकों ने यथार्थ जीवन पर आधारित विभिन्न विधाओं में रचनाएँ की हैं। पारिवारिक जीवन, प्यार और यथार्थ के पुट के साथ-साथ मनोरंजक तत्व भी इसमें जोड़े गए। मु. वरदराजनार, अकिलन आदि भी प्रसिद्ध उपन्यासकार थे।

अशोकमित्रन, अंबै, आंडाल प्रियदर्शिनी, जे.डी. क्रूस, आदवन, इंदिरा सौंदरराजन, इंदिरा पार्थ सारथी, कंदसामी, कल्की, शिवशंकरी, चारु निवेदिता, सुंदर रामस्वामी, शुभा, सुजाता, तामरै, जानकिरामन, देवन, प्रपंचन, बालकुमारन, रंगराजन, राजेश कुमार, लक्ष्मी आदि आधुनिक लेखकों में गिने जाते हैं।

निष्कर्षत: एक प्राचीन भाषा बनी तमिल निश्चय ही हमारी संस्कृति का वाहक है। संस्कृत और तमिल साहित्य हमारी दो आँखों के समान महत्वपूर्ण है। चूंकि साहित्य न केवल सौंदर्यानुभूति से आनंद प्राप्ति के लिए, बल्कि उन्नत लक्ष्यों से प्रेरणा प्राप्त करने की दृष्टि से भी पढ़ा जाता है, अत: भारतीय एकता के समुन्नत विचारों से भरपूर तमिल साहित्य के अध्ययन से निश्चय ही हम लाभान्वित हो सकेंगे।

-डॉ. जमुना कृष्णराज

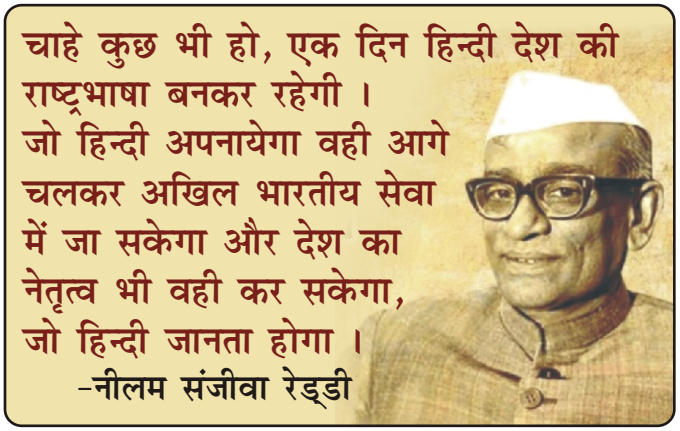

हिन्दी का उचित स्थान : आठवीं अनुसूची या राष्ट्रभाषा

रचना चतुर्वेदी

भारत में प्रतिवर्ष 14 सितंबर को हिन्दी दिवस मनाया जाता है। इस दिन हिन्दी बोलने वाले भारतवासी हिन्दी बोलने वालों को हिन्दी में बातचीत करने का संदेश देते हैं। यह सब बहुत अटपटा-सा लगता है। मन में अनेक प्रश्न कुलबुलाने लगते हैं। भारत में भारत की भाषा को मनाने का क्या प्रयोजन है? क्या "हिन्दी" कोई आयोजन या त्यौहार है जो 14 सितंबर को मना लिया जाता है? क्या हिन्दी के प्रति हमारे सम्मान की अभिव्यक्ति सरकारी दफ्तरों में हिन्दी पखवाड़ा मना लेने से हो जाती है? क्या "हिन्दी दिवस" के बधाई संदेश फेसबुक, व्हाट्सअप इत्यादि पर भेजने मात्र से हिन्दी की सेवा हो जाती है?

ये प्रश्न मन-मस्तिष्क को झकझोर देते हैं। सबसे बड़ा प्रश्न तो यह उठ खड़ा होता है कि स्वतंत्रता के 70 से अधिक वर्षों के उपरांत भी हम भारतवासी हिन्दी को उसका उचित स्थान, उसका राष्ट्रभाषा होना, क्यों नहीं दिला सके? आखिर क्यों हिन्दी के लिए यह प्राप्त करना अनंतकाल की प्रतीक्षा बन गया है?

इन प्रश्नों के उत्तर खोजने के लिए सबसे पहले 14 सितंबर का इतिहास जानना आवश्यक है। सन 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण कार्य संविधान के निर्माण का था। इसके लिए एक संविधान-समिति का गठन किया गया था। इस समिति में लंबे समय तक विभिन्न विषयों पर विचार-विमर्श किए गए। भारत जैसे विविध भाषाओं वाले देश के लिए भाषा का प्रश्न सबसे जटिल था। इसी कारण समिति के सदस्यों में भाषा को लेकर बहुत मतभेद थे। उनके समक्ष भाषा को लेकर कई प्रश्न थे- जैसे कि संविधान किस भाषा में लिखा जाए, सदन की कार्यवाही किस भाषा में हो, कौन सी भाषा राष्ट्रभाषा हो इत्यादि। इनमें राष्ट्रभाषा के संबंध में सदस्यों में एकमत न हो सका और यह विवाद भी सुलझ न सका। इसे सुलझाने के प्रयास में 14 सितंबर 1949 में संविधान समिति एक समझौते पर पहुँची जिसे "मुंशी-आयंगार समझौता" कहा जाता है। इसके अनुसार देवनागरी लिपि में लिखी हिन्दी को राजभाषा घोषित कर दिया गया। हालाँकि इसके साथ ही हिन्दी को यह आश्वासन भी दिया गया था कि संविधान लागू होने के 15 वर्षों के बाद उसे राष्ट्रभाषा का स्थान दिया जाएगा। परंतु 15 वर्ष बीतते-बीतते तमिलनाडु सहित दक्षिण भारत के विभिन्न राज्यों में हिंसक विरोध आरंभ हो गए और हिन्दी की प्रतीक्षा अनंतकाल की प्रतीक्षा बन गई। 15 वर्ष पूरे होने से पहले ही 1963 में ऐसा कहा गया कि अहिन्दी भाषी राज्यों की सहमति के बिना हिन्दी को राष्ट्रभाषा नहीं बनाया जाएगा। तब से हिन्दी आठवीं अनुसूची में अन्य 21 भाषाओं के बीच रहते हुए अपने उचित स्थान की प्रतीक्षा करती हुई धैर्यपूर्वक बैठी है। हिन्दी को उसका स्थान भले ही आज तक न मिल पाया हो परंतु देशभर में जो सच्चाई प्रत्यक्ष रूप से दिखाई दे रही है उसे किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। आज इस बात से कौन अपना मुँह मोड़ सकता है कि हिन्दी न केवल भारत में बल्कि विश्व में जन-जन की भाषा बन चुकी है। जनगणना के अनुसार भारत की कुल आबादी का 44% हिस्सा हिन्दी बोलता है। आज हिन्दी विश्व की सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषाओं की गिनती में चौथे स्थान पर विराजमान है। आज विश्व भर में 100 करोड़ से अधिक लोग हिन्दी में बातचीत कर सकते हैं। हिन्दी की बात करते हुए गुजराती भाषी पूज्य महात्मा गाँधी का ख्याल आता है, जिन्होंने आज से लगभग 100 वर्ष पूर्व सन् 1918 में इंदौर में आयोजित "हिन्दी साहित्य सम्मेलन" में बोलते हुए हिन्दी को जनमानस की भाषा कहा था। भारत उस समय स्वतंत्रता -संग्राम के कठिन समय से गुजर रहा था। तब गाँधीजी ने हिन्दी की गंगा-जमुनी संस्कृति को खूब सराहा था। उन्होंने तब यह समझा था कि यही एक ऐसी भाषा है जो विपदा की इस कठिन घड़ी में समस्त भारतवासियों को जोड़ने में सक्षम है। इतिहास साक्षी है कि सन 1942 से 1945 के दौरान जब सारे देश में स्वतंत्रता की लहर सबसे अधिक तीव्र थी, तब राष्ट्रभक्ति से ओतप्रोत जितनी रचनाएँ हिन्दी में लिखी गईं उतनी किसी अन्य भाषा में इतने व्यापक रूप से नहीं लिखी गईं थीं ।

गाँधी जी हिन्दी के लचीले स्वभाव से भली-भाँति परिचित थे। उनका मानना था कि हिन्दी ही एकमात्र ऐसी भाषा है जो कि अरबी, फारसी, संस्कृत, अंग्रेजी सभी के साथ सरलता से सामंजस्य बैठा सकती है। तब उन्होंने सर्वप्रथम तमिलनाडु में हिन्दी प्रचार के लिए पाँच हिन्दी-दूत भेजे थे जिनमें उनके एक पुत्र भी थे। गाँधीजी का सपना हिन्दी को राष्ट्रभाषा का प्रतिष्ठित स्थान दिलाने का था। परंतु दुर्भाग्यवश स्वतंत्र भारत को बाल्यावस्था में ही छोड़कर बापू चल बसे। यदि हिन्दी की आठवीं अनुसूची में अब तक बैठे रहने के पीछे छिपे कारणों को खोजने का प्रयास किया जाए तो कहा जा सकता है कि इसके लिए भारत का जन-समुदाय नहीं अपितु राजनीति अधिक उत्तरदायी है। 1947 के बाद से कितनी ही सरकारें आईं और चली गईं, सब ने "हिन्दी दिवस" तो मनाया, हिन्दी प्रचार के लिए बजट भी तय किया, राजभाषा अधिकारी भी नियुक्त किए परंतु राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर चुप्पी साधे रहीं। देश के अनगिनत राजनैतिक दल निश्चय ही अपने वोट बचाने के लिए या अपनी सरकार चलाने के लिए या अपनी पार्टी को राज्य की सीमा से निकालकर राष्ट्रीय पहचान दिलाने के लिए तो हिन्दी का महत्व स्वीकारते हैं परंतु उसे राष्ट्रभाषा की उपाधि देने में सदैव एक हिचकिचाहट दिखाते रहे हैं। राजनीति के अतिरिक्त हम तथाकथित हिन्दी वाले भी हिन्दी की इस स्थिति के लिए कम उत्तरदायी नहीं

हैं। हममें आग की कुछ कमी प्रतीत होती है, हम अक्सर ठंडे और ढीले पड़ जाते हैं। सच तो यह है कि हम अब तक अपने आप को अंग्रेजी-मोह से मुक्त नहीं कर पाए हैं। हम बात तो हिन्दी की करते हैं परंतु अपने घरों के बाहर अपने नाम की पट्टी अंग्रेजी में लटकाते हैं। हम अपने बच्चों को अंग्रेजी स्कूल में पढ़ाते हैं, उनके ब्याह के निमंत्रण-पत्र अंग्रेजी में छपवाते हैं, और तो और उन्हें अपने चाचा-चाची से अंकल-आंटी कहने का दुराग्रह भी करते हैं। हम हिन्दी वाले अहिन्दी प्रांतों में कितने ही बरस क्यों न रह लें, तमिल या मलयालम सीखने का कोई प्रयास नहीं करते। इस प्रकार अपने इस व्यवहार से हम अहिन्दी-भाषियों की हिन्दी के प्रति उदासीनता को ही बढ़ावा देते हैं। हमें अवश्य ही अपने अंग्रेजी-मोह से मुक्त होना होगा और अन्य प्रांतों में रहते समय उनकी भाषा को अपनाने का प्रयास भी करना होगा। तभी भाषाओं के बीच व्याप्त कटुता दूर होगी और पूरे देश की विभिन्न भाषाओं के बीच परस्पर मधुरता बढ़ेगी। हिन्दी के मार्ग में एक बड़ी बाधा विभिन्न प्रकार के कुतर्कों व भ्रांतियों के मायाजाल से भी उत्पन्न हो रही है। ऐसी भ्रांति फैलाई जा रही है कि हिन्दी भाषा सर्वथा अवैज्ञानिक है तथा इसमें गणित, मेडिकल व इंजीनियरिंग आदि की शिक्षा संभव नहीं है। इन बातों का कोई ठोस आधार नहीं है। ऐसा कहने से पहले हमें जापान, फिलैंड, जर्मनी और फ्रांस जैसे देशों पर अपनी दृष्टि डालनी चाहिए जो कि अपनी-अपनी राष्ट्रभाषाओं के माध्यम से उच्च शिक्षा प्रदान करके आज विश्व के अग्रणी देशों में गिने जाते हैं। स्वतंत्र भारत के लिए यह नितांत आवश्यक है कि हम अपने अंग्रेजी-मोह और परतंत्रता के मानसिक बंधनों से मुक्त हों ।

इस प्रकार के तर्क-कुतर्क में समय बर्बाद करने के स्थान पर हम राष्ट्र की भाषा हिन्दी को उसका गौरवपूर्ण स्थान दिलाएँ जिसकी वह सच्ची अधिकारिणी है। यहाँ दो प्रश्न अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। पहला यह कि आखिर राष्ट्रभाषा की आवश्यकता क्यों पड़ती है? और दूसरा यह कि आखिर हिन्दी ही राष्ट्रभाषा क्यों हो ? इनके उत्तर में यदि राष्ट्रभाषा शब्द पर विचार किया जाए तो यह बात सामने आती है कि यह कोई संवैधानिक शब्द नहीं है बल्कि जनमानस के द्वारा निर्मित एक भावनात्मक शब्द है, जिसका आधार अत्यंत व्यावहारिक है। राष्ट्रभाषा प्रत्येक राष्ट्र की आवश्यकता होती है क्योंकि राष्ट्र भूमि का एक टुकड़ा मात्र नहीं होता। वह मूक-बधिर और निष्प्राण कदापि नहीं होता।

जिस प्रकार ईश्वर की प्रतिमा में भक्त की आस्था प्राण रूप में प्रतिष्ठित होती है उसी प्रकार देशवासियों की भक्ति राष्ट्र के प्राण रूप में प्रतिष्ठित होती है। कोई भी राष्ट्र अपने वासियों की धड़कनों से स्पंदित होता है, उनकी आँखों से दृष्टि पाता है और उनकी भाषा से ही मुखर होता है। राष्ट्र की भाषा एक धागे की भाँति समस्त देशवासियों को जोड़े रखने का काम करती है। विशेषकर भारत जैसे विविध भाषाओं वाले देश में तो राष्ट्रभाषा की आवश्यकता अक्षरश: निर्विवाद है। राष्ट्र की भाषा बनने में सर्वथा समर्थ व सक्षम भाषा हिन्दी ही है। हिन्दी देश में एकता को सुदृढ़ करने का यह पावन कार्य स्वाधीनता संग्राम के समय से करती आई है और चिरकाल तक करती रहेगी। चाहे संविधान उसे राजभाषा कहे या राष्ट्रभाषा, वह अपने दायित्व से न कभी विमुख हुई है और न कभी होगी। हिन्दी की कुछ विशेषताएँ एवं शक्तियाँ हैं जो उसे राष्ट्रभाषा बनने के लिए उपयुक्त सिद्ध करती हैं। हिन्दी की सबसे बड़ी शक्ति यह है कि वह बहुजन की भाषा है। जहाँ भारत की अन्य भाषाएँ अपने-अपने प्रांतों की सीमा में ही बोली व समझी जाती हैं वहाँ हिन्दी भारत के 9 राज्यों की आधिकारिक भाषा है। इसके साथ-साथ लगभग सभी राज्यों में बोली व समझी जाती है। हिन्दी की दूसरी विशेषता है उसके स्वभाव का लचीलापन। वह इतनी सरल और मधुर है कि सहज ही सबका मन मोह लेती है। वह अन्य भाषाओं के शब्दों को दूध में शक्कर की भाँति अपने भीतर मिला लेती है। वास्तव में हिन्दी भारत के हृदय की सच्ची भाषा है। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण हिन्दी का विकास बड़ी सहजता से निर्बाध गति से होता आ रहा है। वह नदी की धारा के समान है जो स्वयं अपना मार्ग बनाती है और मार्ग में आने वाली चट्टानों से टकराने का साहस रखती है। वह अपनी लोकप्रियता के कारण स्वत: ही भारत में संपर्क भाषा के रूप में अपनी जड़ जमा चुकी है। विशेषकर पिछले 20-25 वर्षों में जब से कंप्यूटर और इंटरनेट ने भारत के नवयुवकों को रोजगार के कारण देश भर में घुमाना शुरू किया है, हिन्दी स्वाभाविक रूप से संपर्क भाषा बन गई है। हिन्दी न केवल भारत में बोली और समझी जा रही है बल्कि आज विश्व भाषा के रूप में भी अपनी पहचान बना चुकी है। मॉरिशस, सूरीनाम आदि देशों में तो यह बरसों से राजकाज की भाषा बनी हुई है। खाड़ी के देशों में तो हिन्दी एक ऐसी सशक्त संपर्क भाषा का रूप ले चुकी है जो एशिया के सभी देशों को जोड़ने का कार्य कर रही है। हिन्दी की इसी ताकत को पहचानते हुए हाल ही में संयुक्त अरब अमीरात की सरकार ने वहाँ के राजकाज की तृतीय भाषा के रूप में हिन्दी को मान्यता प्रदान की है। इंटरनेट के बाद से तो हिन्दी की उड़ान को नई गति मिल गई है। कंप्यूटर के कारण हिन्दी में टंकण की बाधा दूर होते ही देश-विदेश से अनेक ई-पत्रिकाएँ निकलने लगीं हैं जिन्हें पढ़ने व लिखने वालों की संख्या दिनों-दिन बढ़ती जा रही है।

देश-विदेश में बसे हिन्दी प्रेमी अब बड़ी सरलता से अपने विचार ब्लॉग, ट्विटर और फेसबुक के माध्यम से सबसे साझा कर पा रहे हैं। हिन्दी में न केवल भारतीय मूल के लोग बल्कि विदेशी लोग भी खूब रुचि रख रहे हैं। आज यूरोप और अमेरिका सहित विश्व के लगभग 260 विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ाई जा रही है। पोलैंड में रामायण पर खूब शोधकार्य हो रहा है। यह सब हिन्दी की ताकत को दर्शाता है। इतना ही नहीं,हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र में आधिकारिक भाषा का स्थान दिलाने के लिए भारत सरकार निरंतर प्रयास कर रही है। बहुत संभव है कि संयुक्त राष्ट्र में स्थापित होने के

उपरांत भारत में हिन्दी को उसका वास्तविक स्थान मिल जाए। जिस प्रकार "योग" को विदेश से "योगा" बनकर लौटने पर भारतवासियों ने उसे उन्मुक्त भाव से स्वीकारा और अपने हृदय में स्थान दिया, उसी प्रकार संयुक्त राष्ट्र से लौटने पर तो भारत में हिन्दी को उसका उचित स्थान मिलने में कोई संदेह दिखाई नहीं देता ।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि हिन्दी ने देश-विदेश दोनों में अपनी पहचान बना ली है, वह भी अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बने बिना। यही हिन्दी की वास्तविक शक्ति है। वह किसी सरकार की सहमति या संरक्षण से बँधी नहीं है। वह स्वच्छंद भाव से अपनी निर्बाध गति से बहती आ रही है और सदा बहती रहेगी। उसे किसी सिंहासन या राजमुकुट की चाह नहीं है क्योंकि राजतंत्र का युग बीत चुका है। अब लोकतंत्र का युग है जहाँ लोगों का प्यार सर्वोपरि होता है, जो हिन्दी को भरपूर मिल रहा है और अनादिकाल तक मिलता रहेगा।

पृष्ठ संख्या 16 का शेष

उपलब्ध कराने के लिए एक आवश्यक उपकरण बन जाती है। ऐसे में भारतीय भाषाओं को रोमन लिपि में लिखने या बोलचाल में हिंगलिश का प्रयोग सम्यक नहीं कहा जा सकता। अब तो हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं को आसानी से उनकी लिपियों में कम्प्यूटर या मोबाइल पर भी लिखा जा सकता है। कई बार इसका ज्ञान न होने पर भी लोग इन्हें रोमन लिपि में लिखते हैं। एक लम्बे समय तक हिन्दी के विभिन्न फॉन्ट्स ने भी इस प्रकार की समस्याएँ पैदा कीं, पर अब तो यूनिकोड के चलते हिन्दी लिखना और भी आसान हो गया है। हिंगलिश सामाजिक से ज्यादा व्यवहार से जुड़ी समस्या है। कई बार अंग्रेजी का इस्तेमाल करना लोगों को शान की बात लगता है, पर समस्या यह है कि वे न ही अच्छी हिन्दी जानते हैं और न ही अच्छी अंग्रेजी। ऐसे में अपनी सुविधानुसार संवाद में इसका इस्तेमाल करके एक नई भाषा के ईजाद की कल्पना करते हैं। नतीजन, व्याकरणिक त्रुटियों से लेकर अच्छे शब्दों तक के चयन में पीछे रह जाते हैं। इसमें कोई शक नहीं कि, हिन्दी बेहद उदार भाषा है। दुनिया की तमाम भाषाओं से इसने कई प्रचलित शब्दों को आत्मसात करके अपनी व्यापकता को सुदृढ़ किया है। पर भारतीय भाषाओं को सुदृढ़ करने के लिए यह भी जरूरी है कि, हम अपनी भाषाओं यानी संस्कृत, हिन्दीतर भारतीय भाषाओं और बोलियों से भी अधिक से अधिक तत्सम, तद्भव और देशज शब्द अपने शब्द-कोशों में लें और उनका भरपूर इस्तेमाल भी करें।

प्रश्न : आपने हमें अपना बहुमूल्य समय दिया इसके लिए हम आपका आभार व्यक्त करते हैं। आप एक वरिष्ठ सरकारी अधिकारी है । आपकी बातों का प्रभाव समाज के हर वर्ग तक पहुँचता है। अंत में आप युवाओं तथा पाठकों के लिए क्या संदेश देना चाहेंगे ?

उत्तर : 'हिन्दुस्तानी भाषा भारती' पत्रिका ने मुझे अपनी अभिव्यक्तियों को विस्तार देने का सुअवसर दिया, इसके लिए आभारी हूँ। जहाँ तक संदेश की बात है, हर कोई एक दौर में युवा होता है। यह उम्र का वह दौर होता है, जब हममें से अधिकतर लोग बेहद आदर्शवादी, संवेदनशील, रचनात्मक, मौलिक सोच से भरपूर, ऊँचे सपने देखने वाले और उन्हें पूरा करने का जज्बा रखने वाले होते हैं। इसलिए युवाओं को राष्ट्र का भविष्य कहा जाता है। हमारी कोशिश होनी चाहिए कि इन गुणों को बरकरार रखें। इंटरनेट, सोशल मीडिया के इस दौर में जिस तरह से लोगों में मौलिकता का ह्रास हो रहा है और हर कुछ गूगल पर ढूँढ़ने या कॉपी-पेस्ट की प्रवृत्ति बढ़ रही है, उसे उचित नहीं कहा जा सकता। वास्तविक जीवन की बजाय वर्चुअल जीवन की ओर ज्यादा झुकाव भी युवाओं की मनोवृत्ति में तमाम अनचाहे परिवर्तन ला रहा है। युवाओं से ज्यादा रचनात्मक और सामाजिक सरोकारों के प्रति भी अपनी जिम्मेदारी निभाने की आशा की जाती है। युवा साहित्यकारों से भी कहना चाहूँगा कि आज भूमण्डलीकरण एवं उपभोक्तावाद के इस दौर में साहित्य और लेखन को संवेदना के उच्च स्तर को जीवंत रखते हुए समकालीन समाज के विभिन्न अंतर्विरोधों को अपने आप में समेटकर देखना चाहिए एवं साहित्यकार के सत्य और समाज के सत्य को मानवीय संवेदना की गहराई से भी जोड़ने का प्रयास करना चाहिये। इसमें कोई शक नहीं कि युवा साहित्य के क्षेत्र में अच्छा कार्य कर रहे हैं, पर उन्हें यह भी ध्यान देना होगा कि उनकी रचनात्मकता किसी गुट विशेष का मोहरा न बन जाये तथा रचनाओं में मौलिकता की बजाय 'प्रायोजित' होना न हावी हो जाये।

-कृष्ण कुमार यादव
निदेशक, डाक सेवाएँ, लखनऊ मुख्यालय
परिक्षेत्र (उ.प्र.)-226001

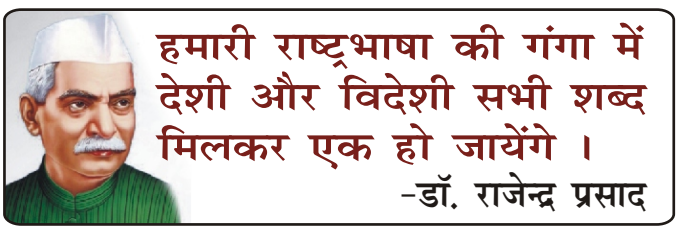

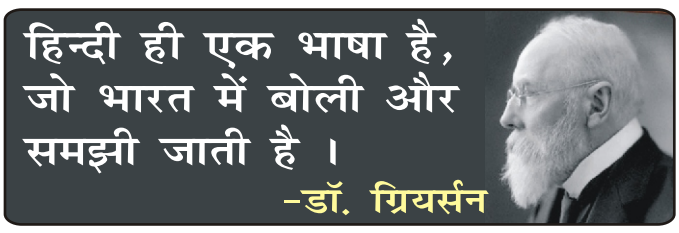

तमिल भाषा-साहित्य-संस्कृतिः अतीत एवं वर्तमान

डॉ. आनन्द पाटील

तमिल भाषा और प्रांत का नाम आते ही हिन्दी भाषा-भाषी समाज तथा साहित्य जगत में एक विशिष्ट विचार सहज ही आता है कि इस तमिल भाषा-संस्कृति के संवाहकों में अन्य भाषा-भाषियों के प्रति प्रकट रूप से अस्वीकृति का भाव है और अपनी भाषा-संस्कृति एवं परम्परा का अतीव मान-अभिमान तथा स्वत्वात्मकता है। यह व्यापक रूप से सत्य भी है। ऐसा होने के पीछे एक मात्र कारण कुछ विद्वानों द्वारा तमिल को सर्वतः प्राचीन भाषा बताते हुए किये गये तर्क-वितर्क हैं, जो तमिल भाषी जनता की मानसिकता को एक रूप-आकार देने में सफल सिद्ध हुए। तद्नंतर वे तर्क-वितर्क राजनीतिक शतरंज पर विशेष रूप से (उलट-फेर के साथ) प्रस्तुत किये गये। इस उपक्रम से जनता की उक्त मानसिकता अत्यधिक बलवती हुई और परिणामस्वरूप तमिल जनमानस में इस भावना एवं चेतना की उत्पत्ति हुई और उसका प्रकारान्तर से इस प्रकार विकास हुआ कि तमिल जनमानस ने एक दृढ़ धारणा निर्धारित कर ली कि भारतीय संस्कृति की निर्वाहक एवं भाषा-जननी मानी जाने वाली संस्कृत आर्यों के वर्चस्व के कारण सर्वतः प्राचीन मानी गयी और तमिल का वैसा प्रचार-प्रसार नहीं हो सका जो कि उसकी समृद्धता की दृष्टि से होना वांछनीय था। यद्यपि यह स्पष्ट हो चुका है कि आर्यों का विदेशी होना मिथ्या अवधारणा है, परंतु औपनिवेशिक तथा राजनीतिक वर्चस्व के लिये भारतीय इतिहास में ऐसी (मनगढ़ंत) अवधारणाएँ सृजित और प्रचारित-प्रसारित की गयीं, जिसका प्रभाव भारतीय जनमानस में आज तक विद्यमान है। वास्तव में इस देश को तोड़ने की दुरभिसंधियों में भाषा की प्राचीनता का विवाद खड़ा कर देने का षड्यंत्र विशेषतः राजनीतिक दृष्टि से सफल रहा। 'द्राविड़ राजनीति' का पूरा इतिहास इस बात का प्रमाण है कि भाषाभिमान को स्वत्वात्मकता के चरम तक ले जाकर तथा उसे ढाल बनाकर जनता में अन्य भाषा-भाषियों के प्रति द्वेष की भावना जाग्रत की और रखी गयी। परिणाम स्वरूप तमिल भाषी जनमानस ने स्वभाषा प्रेम के नाम पर स्वत्वात्मकता और अन्य भाषा-भाषियों का तिरस्कार विकसित होता गया। वस्तुस्थिति संस्कृत की अस्वीकृति से लेकर हिन्दी की अस्वीकृति तक ही सीमित नहीं रही अपितु अपने प्राचीनतम होने का मिथ्या अभिमान अत्यंत दीर्घतर होता गया और कालांतर में तमिल भाषा एवं संस्कृति के गौरव की आड़ में हिन्दी विरोधी आंदोलन ने जन्म लिया और वह कई चरणों में व्यापक से विकराल होता गया।

भाषा-साहित्य इतिहास के अध्ययन-अनुशीलन से एक बात और प्रकट होती है कि भारतीय अथवा अभारतीय होने के विवादों की श्रृंखला में एक कड़ी तब और जुड़ी, जब कुछ विद्वानों ने तमिल-भाषियों के भारतीय होने पर भी संदेह जताया। पूर्ण सोमसुन्दरम ने अपने ग्रंथ 'तमिल और उसका साहित्य' में संदेह उत्पन्न करने वाले उन विद्वानों का नामोल्लेख नहीं किया है परन्तु अपने शोध-अध्ययन के आधार पर एक समेकित मंतव्य प्रस्तुत करते हुए लिखा है- "तमिल-भाषी लेमूरिया कहलाने वाले उस विशाल भू-खण्ड के निवासी थे, जो वर्तमान दक्षिण भारत से अफ्रीका तक फैला हुआ था। बाद में भौगोलिक उथल-पुथल के कारण यह भू-खण्ड जलमग्न हो गया और इस कारण तमिल-भाषी दक्षिण भारत और श्रीलंका तक सीमित रह गए।" (पूर्ण सोमसुन्दरम, तमिल और उसका साहित्य, राजकमल प्रकाशन, पृ. 9-10) इस कथन के आलोक में द्रविड़ों को दक्षिण में खदेड़ने वाली धारणा का खण्डन हो जाता है। इसी ग्रंथ में उन्होंने अन्य विद्वानों के मत का उल्लेख करते हुए लिखा है- "तमिल-भाषी प्राचीन क्रीट द्वीप के सुसभ्य आदिम निवासियों के वंशज थे और उन्होंने मध्य एशिया से होकर भारत में प्रवेश किया था। प्रसिद्ध यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस के अनुसार, क्रीट के आदिवासियों का नाम तमिलाइ था और मध्य एशिया के लिशियन लोग, जो उनके वंशज थे, अपने को त्रिम्मिल कहा करते थे। क्रीट के आदिवासियों की भाँति प्राचीन तमिल-भाषी भी मृतकों को विशाल घड़ों में बन्द करके दफनाया करते थे। क्रीट, बाविलोन, ईरान, उत्तरी सिंध, पंजाब, दक्षिण भारत आदि स्थानों में प्राप्त इस प्रकार के 'मृतकघ्रघट' एक जैसे लगते हैं, जिससे इस विचार की पुष्टि होती है।" (वही, पृ. 10)आगे अपने कथन में अन्य कुछ विद्वानों के अभिमत प्रस्तुत करते हुए उन्होंने लिखा है- "द्राविड़ों का जन्म स्थान पश्चिमी एशिया था और वे सुमेरियन वंश के थे।" (वही, पृ. 10) कुछ अन्य विद्वान "उनको चीन से आया हुआ बताते हैं।" (वही, पृ. 10) इसी कड़ी में समाहार की दृष्टि से यह भी मत सामने आता है कि "मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के प्राचीन भग्नावशेष, बिलोचिस्तान में तमिल से मिलती-जुलती भाषा का आज तक प्रचलन, उत्तर भारत की विभिन्न जातियों में द्राविड़ी भाषाओं का बोला जाना आदि तथ्य इस बात को प्रमाणित करते हैं कि प्रागैतिहासिक एवं ऐतिहासिक काल में द्राविड़ जाति के लोग बिलोचिस्तान से कन्याकुमारी तक समस्त भारत में फैले हुए थे।" (वही, पृ. 10) अर्थात् कौन भारतीय है और कौन अभारतीय है, यह प्रश्न अत्यंत जटिल है। इसका कोई सर्वस्वीकृत और अंतिम उत्तर आज तक उपलब्ध नहीं हो पाया है।

परन्तु इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि "भाषाओं का ज्ञान हमें राजनीतिक चेतना के फलस्वरूप ही मिलता है। दक्षिण में तमिल प्रदेश में राजनीतिक चेतना ऐतिहासिक रूप में सर्वप्रथम मिलती है और इसी का परिणाम- तमिल भाषा और साहित्य है।" (राजमल बोरा, भारत की भाषाएँ, वाणी प्रकाशन, पृ. 191) इस

चेतना के विकास के बावजूद इस तथ्य को भी विस्मृत नहीं किया जा सकता कि "तमिल भाषा द्रविड़ परिवार की समृद्ध और प्राचीन भाषा होने पर भी उसके भौगोलिक प्रसार के रूप में द्रविड़ परिवार की अन्य भाषाओं के क्षेत्र में भी कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती-कुछ ज्ञात नहीं है।" (वही, पृ.191) अर्थात् उसका क्षेत्र अत्यंत सीमित ही रहा है। तमिल के प्राचीन लेखकों ने भी इसकी सीमा के संबंध में लिखा है। 'तोलक्काप्पियम' शीर्षक तमिल व्याकरणाचार्य तोलकाप्पियरने लिखा है- "वेंगडम (तिरुपति) की पहाड़ी से लेकर दक्षिण में कुमारी तक तमिलों का सुंदर देश है।" (अवध नंदन, तमिल साहित्य और संस्कृति, सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, 1958, पृ. 14) 'शिलप्पदिकारम्' के रचयिता इलगोअडिकल ने लिखा है- "वेंकटम और कुमारी तथा समुद्रों के बीच तमिल देश का विस्तार है।" (वही, पृ. 14) अर्थात् तमिल की सीमा दक्षिण भारत में तिरुपति से लेकर समुद्र किनारे वाले क्षेत्र कन्याकुमारी तक दिखाई देती है। उल्लेखनीय है कि कालांतर में तिरुपति आंध्र प्रदेश का हिस्सा बना।

भाषाई प्राचीनता के विवादों के बीच एक कड़ी उल्लेखनीय है कि तमिल पर संस्कृत का स्पष्ट प्रभाव रहा है, जिससे प्राचीनता के विवाद को विराम मिलता है। इस तथ्य की पुष्टि कवि तिरुवल्लुवर की रचना 'तिरुक्कुरल' में संस्कृत के शब्दों के प्रयोग से होती है। यह एक नीतिकाव्य है, जो कि अपनी प्रसिद्धि के कारण देश-विदेश की अनेकानेक भाषाओं में अनुदित है। तमिल जनमानस में संदर्भ एवं प्रसंगानुसार 'तिरुक्कुरल' के छंद उदाहरण स्वरूप उद्धृत होना भी इस बात का प्रमाण है कि जिस प्रकार हिन्दी में 'रामचरितमानस' लोकप्रसिद्ध काव्य है, ठीक उसी प्रकार तमिल में 'तिरुक्कुरल' का स्वाभाविक प्रचलन लोकप्रसिद्धि का जीवंत प्रमाण है। अस्तु, 'तिरुक्कुरल' के पहले ही छंद में 'भगवान' शब्द तमिल पर संस्कृत के प्रभाव को रेखांकित करने के लिये प्रमाण सिद्ध है और इसी में कार्यारंभ से पूर्व ईश्वर की वंदना के प्रचलन से भारतीय साहित्यिक-सांस्कृतिक ऐक्य का प्रमाण भी मिलता है। निश्चय ही यह कहा जा सकता है कि तमिल प्राचीन भाषाओं में एक प्रसिद्ध एवं समृद्ध भाषा है। द्रविड़ भाषा परिवार की अन्य भाषाओं में मलयालम तथा तेलुगु में संस्कृत के शब्दों की भरमार सहज ही दिखाई देती है। ऐसी ही स्थिति कुछ सीमा तक कन्नड़ भाषा की भी है।

आज इस तथ्य को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता कि तमिलनाडु में तमिल केवल एक भाषा नहीं है, जो जनसाधारण में भाव-विचार संवहन का काम करती है वरन् वह इस प्रांत की संस्कृति की विशिष्ट पहचान है और अनेकानेक तमिल भाषी विद्वान, यहाँ तक कि जनमानस इसे अपनी संस्कृति का अस्तित्व मानता है। इस कारण वह सहज ही जनता के गौरव और अभिमान का हिस्सा बनी है। परन्तु औपनिवेशिक काल में अंग्रेजी की घुसपैठ के कारण तमिल में अनेक विकार उत्पन्न हुए हैं। वर्तमान पीढ़ी अपनी भाषाई संस्कृति से कट कर अंग्रेजीपरस्ती की ओर सहज ही झुकी हुई है। ऐसा होने के कई कारण हैं। परन्तु शिक्षा के क्षेत्र में माध्यम भाषा और रोजगार की दृष्टि से अंग्रेजी ज्ञान का आधार बनना और कालांतर में उसका स्थायी रूप लेना प्रमुख कारण प्रतीत होता है। यह भी कि ऐसा घटित होने के लिये द्राविड़ राजनीति जनित हिन्दी विरोध ही प्रमुख रूप से उत्तरदायी रहा है। तमिल जनता ने हिन्दी विरोध की हृदयव्यापी भावना के कारण अंग्रेजी को सर्वत: उचित माना। यहीं से टकराव की स्थिति अधिक व्यापक होती गई।इस संदर्भ में निजी प्रसंग उल्लेखनीय है कि तमिलनाडु में हिन्दी का विरोध वर्तमान में तब भी हुआ, जब जुलाई 2012 में मैंने विश्वविद्यालय में 'हिन्दी क्लब' की स्थापना के अवसर पर हिन्दी की राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस समय भी हिन्दी विरोध प्रदर्शन का स्वरूप इतना उग्र था कि कुछ लोगों ने शहर में लगे हिन्दी के बैनर भी फाड़ दिये और कालांतर में हिन्दी विभाग की स्थापना के प्रयासों को देखते हुए अनजान व्यक्तियों द्वारा डराने-धमकाने का प्रयास भी किया गया। सर्वसामान्य तर्क यही था कि हिन्दी से प्यार नहीं और अंग्रेजी से परहेज नहीं। बहरहाल, कठिन परिस्थितियों में 'हिन्दी क्लब' की गतिविधियाँ होती रहीं और 2014 में हिन्दी विभाग सफल रूप से स्थापित हो पाया। इस दशक के अंत तक आते-आते हिन्दी के लिये स्थितियाँ सामान्य हुई हैं। बहरहाल, ऐसी मानसिकता का ही परिणाम है कि तमिल में आज अंग्रेजी जनित विकृतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। कदाचित तमिल के अस्तित्व की लड़ाई के नाम पर हिन्दी का विरोध न होता, आज अंग्रेजी निस्संदेह सभी भारतीय भाषाओं को दरकिनार न कर पाती। हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा होती और तमिल सहित भारत की सभी भाषाओं का साहित्य हिन्दी में भी उपलब्ध होता और उस भाषा की समृद्धता अखिल भारतीय जनमानस तक पहुँच पाती। तमिलनाडु में हिन्दी की स्थिति-गति को रेखांकित करते हुए यह उल्लेखनीय है कि खाड़ी तथा उससे घिरे देशों में (गल्फ कंट्री) नौकरी के लिये जाने वालों ने हिन्दी की आवश्यकता समझी और ऐसे ही लोगों की आवाजाही के कारण हिन्दी प्रचारित-प्रसारित होती रही। तमिलनाडु सरकार की ओर से आज भी हिन्दी के संबंध में विरोध की स्थिति जस-की-तस बनी ही हुई है जो कि भारत की अखण्डता में एक बाधा प्रतीत होती है।

जो भी हो भारतीय भाषा एवं साहित्य के परिप्रेक्ष्य में तमिल की समृद्धता निस्संदेह अविवादित है। इसके प्राचीनतम ग्रंथों में उपलब्ध 'तोलकाप्पियम' का समय 2000 वर्ष पूर्व माना जाता है। वास्तव में यह तमिल भाषा का व्याकरण ग्रंथ है। किसी भी विवाद के होते हुए इस व्याकरण ग्रंथ की उपलब्धता से यह स्पष्ट है कि प्राचीन काल से ही तमिल अत्यंत समृद्ध भाषा रही है। पूर्ण सोमसुन्दरम ने लिखा है- "प्रचलित भारतीय भाषाओं में तमिल ही एक-मात्र ऐसी भाषा है जो संस्कृत के सहारे के बिना हर प्रकार के

विचारों का अभिव्यंजन करने में समर्थ है।" (वही, पृ.10) 'संस्कृत के सहारे' की बात से असहमति के अनेकानेक कारण और प्रमाण उपलब्ध हैं। ऊपर 'तिरुक्कुरल' में संस्कृत शब्दों के प्रयोग की बात की ही जा चुकी है। उल्लेखनीय है कि द्रविड़ भाषा परिवार की अन्य भाषाएँ यथा मलयालम एवं तेलुगु में संस्कृत के शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। पूर्ण सोमसुन्दरम ने तमिल भाषा में संस्कृत शब्दों के प्रयोग के संबंध में लिखा है- "यद्यपि इस समय प्राप्त होने वाले प्राचीनतम तमिल-ग्रन्थों की भी रचना आर्य-द्राविड़ संस्कृतियों के सम्मिश्रण के बाद की गई प्रतीत होती है, तो भी उन ग्रन्थों में संस्कृत के शब्द मुश्किल से दो प्रतिशत ही पाये जाते हैं।" (वही, पृ.10) ऐसा स्पष्ट लिखते हुए उन्होंने इस प्रतिशत गणना का कोई आधार नहीं बताया है। परन्तु आर्य-द्राविड़ के भेद को परे रखकर समझा जाए तो स्पष्ट होता है कि तमिल में संस्कृत भाषा के शब्दों का प्रचलन रहा है और आज द्राविड़ राजनीति के उथल-पुथल के बावजूद तमिल में अनेकानेक संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं के शब्दों का समावेश दिखाई देता है। यद्यपि सर्वसामान्य दृष्टि से अंग्रेजी शब्दों की भरमार है।

ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर यह स्पष्ट है कि तमिल भाषा एवं साहित्य को पाण्ड्य राजाओं ने प्रोत्साहन और सुव्यवस्थित रूप देने का अभूतपूर्व कार्य किया। उनके साहित्य-प्रेम का ही परिणाम रहा कि 'संगम' अर्थात् कवि परिषद की नींव रखी गयी। पूर्ण सोमसुन्दरम ने इसे रेखांकित करते हुए लिखा है- "इस बात के विभिन्न प्रमाण उपलब्ध हैं कि तमिल में सुव्यवस्थित रूप से साहित्य-रचना, लगभग 2600 वर्ष पूर्व आरम्भ हुई। साहित्य-सृजन को प्रोत्साहन देने तथा प्रत्येक रचना को साहित्य की कसौटी पर परखने के लिये उस समय के पाण्ड्य राजाओं के तत्वावधान में एक कवि परिषद् दक्षिण मदुरा में स्थापित की गई। यह परिषद 'तल्लैचंगम (प्रथम संघ) कहलाती है। कहते हैं, अगस्त्य मुनि-रचित प्रथम तमिल व्याकरण 'अगत्तियम्' इस परिषद् की रचनाओं का लक्षण-ग्रन्थ था। बाद में समुद्र के उमड़ने से दक्षिण मदुरा जल-मग्न हो गया, इस कारण पाण्ड्यों की राजधानी 'कवाटपुरम्' में स्थापित की गई। यहीं पर दूसरी कवि परिषद् (इडैचंगम्) की स्थापना, ईसा से लगभग 400 वर्ष पूर्व हुई। कुछ समय बाद कवाटपुरम् के भी समुद्रख्रमग्न हो जाने के कारण, ईसा से पूर्व द्वितीय शताब्दी के आरम्भ में, उत्तर मदुरा (वर्तमान मदुरै) में तीसरी परिषद् स्थापित की गई। यह अन्तिम परिषद् ईसा की प्रथम शताब्दी तक चली।" (वही, पृ.12)

'तोलकाप्पियम' दूसरे काव्य परिषद् की एक-मात्र उपलब्ध रचना है। कहा जाता है कि अन्य सभी कृतियाँ पानी में नष्ट हो गयीं। तीसरे संगम की रचनाओं की खोज स्व. स्वामीनाथ अय्यर ने की अन्यथा प्रथम एवं द्वितीय संगम साहित्य की ही भाँति तीसरे संगम की रचनाएँ भी विलुप्त हो जातीं। तीसरे संगम साहित्य से भी तमिल साहित्य की समृद्धता का परिचय मिलता है। वास्तव में संगम काल के पश्चात् आलवारों और नयनारों द्वारा रचे गए भक्ति साहित्य ने तमिल साहित्य को समृद्ध किया। उल्लेखनीय है कि भक्ति काल की गहरी जड़ें इसी द्राविड़ भूमि में रहीं। हिन्दी साहित्य के पाठकों को साहित्य की विकास यात्रा के इतिहासावलोकन के दौरान 'भक्ति द्राविड़ उपजी'का उल्लेख मात्र मिलता है। ध्यातव्य है कि भगवान विष्णु के उपासक आलवार भक्त कवि और देवाधिदेव महादेव के उपासक नायनार भक्त कवियों की भक्ति के बिना न तो तमिल की बात पूर्ण हो सकती है, न ही अन्य भारतीय भाषाओं में भक्ति के उद्भव और विकास की बात ही पूर्ण हो सकती है। चोल राजाओं के समय में कवि कम्बनने प्रबंध काव्यात्मक शैली में 'रामायण' की रचना करअपने युग का नेतृत्व किया। कम्बन के बाद मध्यकाल में अधिकतर टीकाएँ लिखी गयीं।

तमिल साहित्य का क्रमिक विकास इस प्रकार माना जाता है- संघ पूर्व-काल, संघ काल, संघोत्तर काल, भक्तिकाल, कम्बन काल, मध्यकाल और आधुनिक काल। आधुनिक काल में मन्मोन्मिनियम सुंदरम पिल्लै, गोपालकृष्ण भारती, भारतीदासन, देशिकम विनायक पिल्लै, शंकरदास कृष्णमूर्ति कल्कि, नामक्कल रामलिंगम पिल्लै, सुब्रह्मण्यम भारती, शुद्धानंद भारती, कम्बदासन इत्यादि रचनाकारों के नाम उल्लेखनीय हैं। हिन्दी पाठकों में आधुनिक तमिल रचनाकारों में कवि सुब्रह्मण्यम भारतीऔर भारतीदासन के नाम सर्वाधिक प्रचलित हैं। सुब्रह्मण्यम भारती के गीत 'शक्ति गीत' के नामसे प्रसिद्ध हैं। इन्हें महाकवि भारतिया के नाम से भी जाना जाता है। इनके गीत राष्ट्रभक्ति की भावना से ओतप्रोत थे। मन्मोन्मिनियम सुंदरम पिल्लै द्वारा 1891 में लिखित गीत 'तमिल ताय वाळतु' को स्वतंत्रता के पश्चात् तमिलनाडु सरकार ने तमिल-भाषी समाज का गौरव मानकर 1970 में अधिकारिक रूप से राज्य गीत का दर्जा दिया। वास्तव में यह तमिल मातृभूमि वंदना है। इस गीत को राज्य गीत का दर्जा प्राप्त होने के पश्चात् इसे राज्य के सभी विद्यालयों की प्रात:कालीन प्रार्थना सभा में तथा कार्यक्रमों के आरंभ में विधिवत रूप से गाया जाता है। जबकि समापन राष्ट्रगान से होता है।

अंग्रेजी शासन के दौरान ईसाई मिशनरियों ने तमिल भाषा पर व्यापक काम किया परन्तु स्पष्ट है कि संपूर्ण भारतीय परिप्रेक्ष्य में उनका उद्देश्य (अघोषित) यहाँ की भाषाएँ सीखना और समृद्ध साहित्य को अपनी भाषा में अनुदित करना ही रहा। इसी मार्ग से होते हुए उन्होंने धर्म परिवर्तन का भी मार्ग प्रशस्त किया। परिणामत: आज द्राविड़ प्रांतों में ईसाई धर्म का विस्तार अभूतपूर्व रूप तथा गति में हुआ है। उपनिवेशवाद के परवर्ती समय में हिन्दी की ही भाँति तमिल साहित्य में भी विभिन्न धाराएँ प्रचलन में रहीं। ऐसी ही स्थिति नव-उपनिवेशवाद के समय में भी दृष्टिगोचर होती है। साथ ही अस्मिता विमर्शों का भी वैसा ही रुझान तमिल साहित्य में भी

दृष्टिगोचर होता है। इधर अरविंदन नीलकंडन ('उद्दइयुम इंडिया?', 'ब्रेकिंग इंडिया' 2011) जैसे लेखक औपनिवेशिक समयमें भारत को खण्ड-खण्ड करने हेतु रचे गये षड्यंत्रों को उजागर करने में निरंतर प्रयासरत हैं। वे द्राविड़ राजनीति और दलित अस्मिता के नाम पर फले-फूले अलगाववाद की जड़ों को उजागर करते हुए भारत की एकता और अखण्डता की दिशा निर्धारित करने का उपक्रम कर रहे हैं।

अस्तु, यह सिद्ध है कि तमिल प्रसिद्ध एवं समृद्ध भाषा है। इस बात को भी नकारा नहीं जा सकता कि यदि तमिल जनमानस राजनीतिक विवादों से ऊपर उठकर भारत की अन्य भाषा-भाषियों को स्वीकार करता तो वैश्विक पटल पर भारत की स्थिति निश्चय ही अत्यधिक सुदृढ़ होती। तमिलनाडु में हिन्दी की अनुपस्थिति के कारण तमिल भाषा का साहित्य भारत के अन्य भू-भागों में नहीं पहुँच सका। कदाचित हिन्दी और तमिल का समुचित सामंजस्य होता तो दोनों भाषाएँ आज की तुलना में अत्यधिक समृद्ध होतीं। वैसे इस सत्य को रेखांकित किया जाना चाहिए कि हिन्दी प्रचार-प्रसार के नाम पर प्रचारक संस्थाओं ने सरकार से आर्थिक लाभ ही उठाया है। वास्तव में ऐसी हिन्दी प्रचारक संस्थाओं ने हिन्दी का मटियामेट भी किया और तमिल जैसी समृद्ध भाषा के साहित्य को हिन्दी में उपलब्ध कराने का उपक्रम भी नहीं किया। इस दृष्टि से हिन्दी प्रचार संस्थाओं का अत्यंत लचर प्रदर्शन रहा है।

तमिल भाषी समाज अपनी संस्कृति को भिन्न मानने के बावजूद संपूर्ण भारतीय परिप्रेक्ष्य में (थोड़ा-बहुत परिवर्तन के साथ) सामाजिक-सांस्कृतिक ऐक्य के कई प्रमाण उपलब्ध हैं। देवी-देवताओं के नामों से लेकर, पूजा-अर्चना की विधियाँ, तीज-त्यौहारों तक और इसी क्रम में साहित्यिक अंतर्धाराओं में एकता के दृष्टांत विद्यमान हैं। कहना न होगा कि अगस्त्य मुनि से लेकर महाकवि भारतीय तक सामाजिक-सांस्कृतिक ऐक्य के अनेकानेक दृष्टांत उपलब्ध हैं। महाकवि भारतीय तो उत्तर-दक्षिण के सेतु माने जाते हैं। अलगाववादी राजनीति जनित द्राविड़ आंदोलन ने तमिल जनमानस में भले ही द्राविड़ भेद की दृष्टि आरोपित करने का प्रयास किया हो, वर्तमान में वह शनैः-शनैः प्रभावहीन होता हुआ प्रतीत होता है। भारतीय साहित्य के परिप्रेक्ष्य की दृष्टि से तमिल साहित्य में भी भारत ही नहीं अपितु विश्व की अखण्डता के प्रमाण सहज ही प्राप्त होते हैं। तमिल के प्राचीन प्रसिद्ध कवि कणियन पुंगुन्ड्रनार ने 3000 वर्ष पूर्व 'पुरान्नानुरु' और 'नत्रीनई' शीर्षक दो कविताओं का सृजन किया था और अपनी कविता में 'सार्वभौमिकता' की बात कही थी- 'याधुम उरे यावरम केलिर।' 'याधुम उरे' अर्थात् 'ब्रह्मांड की सभी जगह, हमारी जगह है' और 'यावरम केलिर' अर्थात् 'ब्रह्मांड के सभी नागरिक हमारे संबंधी (मित्र) हैं'। यह न्यूनाधिक रूप में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना का ही रेखांकन है। यही भावना भारत के मूल चरित्र को व्यक्त करती है। "अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्। उदारचरितानांतु वसुधैव कुटुम्बकम् ।।" भारत की इस वैचारिकी को वर्तमान तमिल जनसमाज समृद्ध करने में प्रयासरत दिखाई देता है।

-डॉ. आनन्द पाटील

पूर्वोत्तर भारत का भाषाई परिदृश्य और हिन्दी

हितेन्द्र मिश्र

पूर्वोत्तर भारत भारतवर्ष उत्तर-पूर्वी हिस्सा है। इस भूखण्ड की अपनी अलग विशेषताएं हैं। भौगोलिक रूप से 5182 किलोमीटर में फैली हुई इसकी अंतर्राष्ट्रीय सीमाएं नेपाल, चीन, बंगलादेश, भूटान और म्यांमार से आच्छादित है। इस क्षेत्र का भौगोलिक विस्तार लगभग 262,179 वर्ग किलोमीटर में विस्तारित है जो भारतवर्ष के कुल क्षेत्रफल का लगभग आठ प्रतिशत है। यहाँ की कुल जनसंख्या 45,772,188 तथा उसका घनत्त्व 170 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। सामान्यत: पूर्वोत्तर भारत भारतवर्ष के आठ राज्यों का सामूहिक संबोधन है।

वस्तुत: पूर्वोत्तर भारत के इन राज्यों में असम की उपस्थिति सबसे प्राचीन है। नागालैण्ड पूर्वोत्तर भारत का दूसरा ज्येष्ठ राज्य (गठन तिथि 01 दिसम्बर, सन् 1963 ई.) है। सन् 1971 ई. में पूर्वोत्तर परिषद् (North-East council, NEC)के गठन के उपरांत इस क्षेत्र के विकास के लिए 21 जनवरी, सन् 1972 ई. को अरूणाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम और त्रिपुरा नाम से पाँच और राज्यों का गठन किया गया। इन नवगठित राज्यों में अरूणाचल प्रदेश और मिजोरम को संघ शासित राज्य के रूप में मान्यता मिली थी जो कालांतर में 20 फरवरी, सन् 1987 ई. को पूर्ण राज्य के रूप में मान्यता प्राप्त कर सके।इस प्रकार पूर्वोत्तर में सन् 1972 ई. तक राज्यों की संख्या सात हो गई। पूर्वोत्तर के राज्यों की इस पारिवारिक स्थिति को ही ध्यान में रखते हुए इन्हें सात बहनें (Seven Sister) कहकर संबोधित किया गया। पूर्वोत्तर भारत के आठवें राज्य का गठन 16 मई, सन् 1975 ई. को हुआ तथा पूर्वोत्तर परिषद् में इसे सन् 2002 ई. में सम्मिलित किया गया। सिक्किम के गठन के बाद पूर्वोत्तर में राज्यों की संख्या आठ हो गई जिसे सात बहनों और एक भाई के परिवार के रूप में मान्यता मिली। किंतु पूर्वोत्तर भारत के निवासियों के रहन-सहन, भाषा-बोली, रीति-रिवाज आदि को ध्यान में रखकर यदि पूर्वोत्तर भारत का निर्धारण किया जाये तो इसमें उत्तर बंगाल के दार्जिलिंग, सिलीगुड़ी और कूच बिहार को सम्मिलित किया जाना श्रेयष्कर है।

सामान्यत: इन्हीं सात बहनों एवं एक भाई के रूप में जाने वाले कुल आठ राज्यों के समूह का सामूहिक संबोधन पूर्वोत्तर भारत है। किंतु किसी भी क्षेत्र या अंचल की सीमा केवल राजनैतिक या भौगोलिक सीमाओं मात्र में बंधा कर नहीं रहती। वह निर्मित होती है उन आंतरिक तत्त्वों से सबमें समान रूप से पाई जाती है (वह निर्मित होती है उस क्षेत्रीयता या आंचलिकता से जो सामान्यत: एक समान रूप से उस क्षेत्र विशेष में पायी जाती है। और पूर्वोत्तर भारत की तमाम क्षेत्रीय या आंचलिक विशेषताओं में से एक विशेषता इसकी भौगोलिक विशेषताओं के साथ-साथ यहाँ की सांस्कृतिक विशेषता भी है। पूर्वोत्तर भारत की समस्त प्रकार की विशेषताओं का मुख्य आधार यहाँ का वैविध्य है। सामाजिक, धार्मिक एवं भौगोलिक रूप से यह विविधता भारतवर्ष के किसी भी क्षेत्र में नहीं पाई जाती। भारत में निवास करने वाले जनजातीय समूहों में पूर्वोत्तर भारत में जनजातियों में व्यापक वैविध्य पाया जाता है और इसीलिए भाषा में भी इस वैविध्य के दर्शन होते हैं। वस्तुत: भाषा वह माध्यम है जिससे एक समाज विशेष के लोग आपस में विचार-व्यवहार करते हैं। एक समाज विशेष की इसकी सीमा ही इसमें वैविध्य की जननी है। समाज एक प्रकार के जीवन व्यवहार के लोगों का समूह होता है। और जब भारत में सदियों से अपने-अपने वैशिष्ट्य के साथ मानव समूहों का आगमन हुआ तो यह वैविध्य समूह के साथ-साथ भाषिक स्तर पर भी होना स्वाभविक ही है।

इस प्रकार सीमांकित पूर्वोत्तर भारत में बोली जाने वाली भाषाओं पर ध्यान दिया जाय तो यहाँ मूल रूप से मुख्यत: आग्नेय और तिब्बती बर्मन परिवार की भाषाएँ बोली जाती हैं। इनमें भी मेघालय की खासी मात्र पूर्वोत्तर भारत में आग्नेय परिवार की भाषा है। अरूणाचल की खाम्पती थाई भाषा परिवार से सम्बन्ध रखती है। इसके अलावा अधिकांश भाषाएँ तिब्बती बर्मन परिवार की भाषाएँ हैं। पूर्वोत्तर भारत के जनजातीय समूहों की यह एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि ये भारतीयता के साथ-साथ अपनी मौलिकता के प्रति विशेष सजग दिखाई देते हैं। भारत के अन्य क्षेत्रों में निवास करने वाली जनजातियों पर भाषाई बहुलता के दबाव (सामाजिक और सांस्कृतिक) अधिक हैं, कारण यह है कि उन क्षेत्रें में जनसंख्या के आधार पर वे समूह अल्पसंख्यक हैं और रोजी-रोजगार के कारण दूसरी भाषा का दबाव उन पर अधिक है। किन्तु पूर्वोत्तर भारत की जनजातियों के साथ ऐसा नहीं है यहाँ के राज्यों में निवास करने वाले इन जनजातीय समूहों की आबादी बहुसंख्यक है। इसलिए इन समूहों पर रोजी-रोजगार सम्बन्धी वैसे दबाव नहीं हैं जैसे देश के अन्य क्षेत्रों में हैं। यहाँ बहुभाषिकता का कारण आपसी सम्पर्क और राष्ट्र के साथ सम्मानजनक सम्बन्ध स्थापन है। यहाँ भाषाई बहुभाषिकता का दबाव न होते हुए भी भारत की दूसरी भाषाओं के साथ इनके सम्पर्क आदर्श स्थिति में हैं।

विश्व में बोली जाने वाली भाषाओं के पारिवारिक विभाजन के आधार पर यह देखा जाता है कि भारत में विश्व की कुल पाँच प्रमुख भाषा परिवारों यथा- भारतीय आर्य, द्रविड़, आग्नेय, तिब्बती बर्मन और अंडमानी की भाषाएँ बोली जाती हैं। इन भाषा परिवारों में भारतीय आर्यभाषा परिवार बोलने वालों की संख्या के आधार पर

सबसे बड़ा भाषा परिवार है। भारत में इस परिवार की लगभग 21 प्रमुख भाषाएँ- असमी, उड़िया, उर्दू, कश्मीरी, कोंकणी, खानदेशी, गुजराती, डोंगरी, नेपाली, पंजाबी, बंगाली, विष्णुपुरिया, भीली, मराठी, मैथिली, लहंदा, संस्कृत, सिंधी, शिना, हलाबी और हिन्दी बोली जाती हैं, जिनके बोलने वालों की संख्या का पूरी आबादी में 76.86 प्रतिशत है। इन भाषाओं में पंद्रह भाषाएँ संविधान की आठवीं अनुसूची में भी सम्मिलित हैं।' इस समूह की कुछ भाषाएँ पूर्वोत्तर भारत में भी बोली जाती हैं। जिसमें असमी, बंगाली, विष्णुपुरिया, हिन्दी और नेपाली उल्लेखनीय हैं।

भारत में बोले जाने वाले भाषा परिवारों में दूसरा प्रमुख भाषा परिवार द्रविड़ है। इस भाषा परिवार के बोलने वालों की संख्या भारत की आबादी में 20.82 प्रतिशत है। इस परिवार से सम्बन्धित भारत में कुल सत्रह भाषाएँ बोली जाती हैं, जिसमें कन्नड़, मलयालम, तमिल और तेलुगु संविधान की आठवीं अनुसूची में भी सम्मिलित हैं। इस समूह की कोई भी भाषा पूर्वोत्तर भारत में नहीं बोली जाती। आग्नेय परिवार भारत में बोलने वालों की संख्या के आधार पर तीसरे स्थान पर है। इसके भारत में बोलने वालों की संख्या 1.11 प्रतिशत है। इस परिवार की भाषा के मुख्यत: दो समूह भारत में प्रचलित हैं, वे ख्मेर निकोबारी और मुण्डा हैं। ख्मेर निकोबारी में मॉन-ख्मेर और निकोबारी दो समूह हैं। मॉन-ख्मेर समूह की एक मात्र भाषा- खासी पूर्वोत्तर भारत के मेघालय की प्रमुख भाषा है तो निकोबारी अंडमान में प्रचलित है। मुण्डा समूह की बारह भाषाएँ भारत में प्रचलित हैं जिसमें संथाली को सन् 2003 ई. से संविधान के 92वें संशोधन के माध्यम से आठवीं अनुसूची में स्थान प्राप्त है। तिब्बती बर्मन परिवार के भाषाओं के बोलने वालों की संख्या भारत में अत्यल्प है जो कुल आबादी का लगभग एक प्रतिशत है। बोलने वालों की संख्या इस समूह की भले ही कम हो किंतु विविधता की दृष्टि से यह बहुत ही सम्पन्न समूह है। इसकी भाषाओं की संख्या 66 के आसपास है। इस समूह की तीन मुख्य शाखाएँ- तिब्बती हिमालयन, उत्तरी असम और असमी बर्मन है। भारत में बोली जाने वाली तिब्बती बर्मन समूह की सभी भाषाएँ पूर्वोत्तर भारत में बोली जाती हैं। इस समूह की दो भाषाएँ मणिपुरी और बोडो संविधान की आठवीं अनुसूची में भी शामिल हैं। भारत में बोले जाने वाले भाषा परिवारों में अंडमानी परिवार की भाषाएँ भी बोली जाती हैं। इस भाषा परिवार की भाषाओं के अनेक रूप अंडमान निकोबार द्वीप समूह में प्रचलित हैं। इसके अलावा भारत में थाई समूह की भी एक भाषा खाम्पती बोली जाती है जो अरूणाचल के एक विशिष्ट समूह द्वारा बोली जाती है। भारत की यह भाषाई बहुलता जनजातीय समूहों में भी पायी जाती है। इन जनजातीय समूहों में प्राय: अलग-अलग भाषाएँ बोली जाती हैं। भारत में जनजातीय समूहों की संख्या 705 बताई जाती है। प्राय: प्रत्येक जनजाति अपने रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज की विशिष्टता के साथ-साथ भाषाई वैशिष्ट्य को लिए हुए है। बोलने वालों की संख्या के आधार पर ये चाहे छोटी या बड़ी कह दी जाये, उन्हें जनगणना में सम्मिलित न किया जाय, किंतु महत्त्व की दृष्टि से सभी समान हैं। इसे और स्पष्ट करने के लिए पूर्वोत्तर में प्रचलित भाषाओं की राज्यवार स्थिति के आंकड़ों को देखा जा सकता है।

जनसंख्या की दृष्टि से असम पूर्वोत्तर भारत का सबसे बड़ा राज्य है। जनसंख्या के आधार पर असम भारत का पंद्रहवाँ राज्य है जो क्षेत्रफल की दृष्टि से स्काटलैंड के बराबर है। सन् 2001 ई. की जनगणना के अनुसार यहाँ 48.8 प्रतिशत असमिया तो 27.5 प्रतिशत बंगला भाषी निवास करते हैं। शेष 5.88 प्रतिशत हिन्दी, 4.8 प्रतिशत बोडो, 2.12 प्रतिशत नेपाली के साथ 11.8 प्रतिशत अन्य भाषा भाषियों का हिस्सा इस राज्य में निवास करता है। जनसंख्या के आधार पर पूर्वोत्तर भारत में त्रिपुरा दूसरे स्थान पर है तो भारतीय स्तर पर 22वाँ राज्य है।

इस राज्य में त्रिपुरी बोलने वालों की संख्या 25.46 प्रतिशत है तो बंगला भाषियों का अनुपात 67.14 प्रतिशत है। यहाँ हिन्दी भाषियों की संख्या 1.68 प्रतिशत तो कूकी भाषा-भाषियों की संख्या 1.2 प्रतिशत के बराबर है। जनसंख्या के आधार पर मेघालय पूर्वोत्तर के राज्यों में तीसरे स्थान पर और भारत का 23वाँ राज्य है। इस राज्य की मुख्य भाषा खासी, गारो और जयंतिया है जो यहाँ की पहाड़ियों और जनजातीय समूहों के भी नाम भी हैं। मेघालय में बोलने वालों की संख्या के आधार पर देखें तो खासी 33.82 प्रतिशत, गारो 31.6 प्रतिशत, पनार 10.69 प्रतिशत, बंगाली 6.44 प्रतिशत, नेपाली 1.85 प्रतिशत, वार 1.73 प्रतिशत, हिन्दी 1.62 प्रतिशत, हाजोंग 1.4 प्रतिशत, असमी 1.34 प्रतिशत और अन्य 9.51 प्रतिशत हैं। इसी प्रकार जनसंख्या के आधार पर पूर्वोत्तर का चौथा राज्य मणिपुर है जो इसी आधार पर भारत का 24वाँ राज्य है। इस राज्य में गैर जनजातीय भाषा का दबाव बहुत कम है। मैतेई यहाँ की प्रमुख भाषा है जिसके बोलने वालों की संख्या यहाँ की आबादी में 53 प्रतिशत है। इस राज्य में बंगला और हिन्दी भाषियों का अनुपात 1.25 और 1.14 प्रतिशत है। नागालैण्ड जनसंख्या के आधार पर पूर्वोत्तर का पाचवाँ और भारत का पच्चीसवाँ राज्य है। इस राज्य में भी गैर जनजातीय भाषाओं का दबाव अत्यल्प है। यहाँ कोनयाक, लोथा, अंगामी, आओ, चोकरी, चांग आदि भाषा-भाषियों का अनुपात गैर जनजातीय भाषा-भाषियों से अधिक है। बंगला भाषी 3.77 तो हिन्दी भाषी 3.13 प्रतिशत हैं। अरूणाचल प्रदेश जनसंख्या के आधार पर पूर्वोत्तर का छठवाँ तो भारत का सत्ताइसवाँ राज्य है। क्षेत्रफल के आधार पर यह राज्य पूर्वोत्तर का पहला तो भारत का पंद्रहवाँ राज्य है। भाषाई रूप से भी यह राज्य पूर्वोत्तर का अत्यंत उर्वर राज्य है। यहाँ पचास के आसपास प्रमुख जनजातियाँ और उनकी भाषाएँ विद्यमान हैं। इस राज्य को भाषाई बहुलता में एशिया में प्रथम स्थान प्राप्त है। इस राज्य में निशी, आदी, मोनपा, वांगचू, तांगसा, मिश्मी, मिसिंग, नोक्ते के साथ-साथ असमी, बंगला, नेपाली और हिन्दी भाषियों की भी अच्छी संख्या

विद्यमान है। जनसंख्या के आधार पर भारत का अठ्ठाइसवाँ और पूर्वोत्तर का सातवाँ राज्य मिजोरम भी जनजातीय समूहों और जनजातीय भाषाओं की दृष्टि से अल्पसंख्यक नहीं है। गैर जनजातीय भाषा-भाषियों की संख्या यहाँ अत्यल्प या नहीं के बराबर है। इस राज्य में मिजो भाषी समुदाय प्रांत का सत्तर प्रतिशत से अधिक है। शेष समुदायों द्वारा प्रमुख रूप से चकमा, मारा, ताई, कूकी, त्रिपुरी, हमार, पाइते आदि जनजातीय भाषाएँ बोली जाती हैं। जनसंख्या के आधार पर सिक्किम भारत और पूर्वोत्तर का सबसे छोटा राज्य है। इस राज्य में भारतीय आर्य, आग्नेय, तिब्बती बर्मन, तीनों भाषा-परिवारों की भाषाएँ बोली जाती हैं। यहाँ नेपाली 62.6 प्रतिशत, भूटिया 7.6 प्रतिशत, हिन्दी 6.6 प्रतिशत, लेपचा 6.5 प्रतिशत, लिंबू 6.3 प्रतिशत, शेरपा 2.4 प्रतिशत, तमांग 1.8 प्रतिशत तथा 6.2 प्रतिशत अन्य भाषा-भाषी रहते हैं।

पूर्वोत्तर भारत के भाषाई परिदृश्य को देखने से जो मूल बातें निकलकर सामने आती हैं वे इस प्रकार हैं-

1. भारत में भाषाई वैविध्य की दृष्टि से पूर्वोत्तर भारत सर्वाधिक सम्पन्न है।

2. पूर्वोत्तर की यह भाषाई बहुलता उसे वैश्विक स्तर पर अप्रतिम बनाती है।

3. भाषाई वैविध्य के बावजूद सामाजिक, सांस्कृतिक सौहार्द में कोई समस्या नहीं है।

4. भाषाई वैविध्य के बावजूद बहुभाषिकता का दबाव मैदानी क्षेत्रों जैसा नहीं है, जहाँ छोटी भाषाएँ अपने अस्तित्व के संकट से जूझ रही हैं।

उपरोक्त तथ्यों को लेकर जब विचार करते हैं तो यह बात विचारणीय है कि राष्ट्रीय या क्षेत्रीय स्तर पर इनके अंतर्सम्बन्ध का स्वरूप क्या है ? इस ओर जब ध्यान देते हैं तो 'राष्ट्रभाषा हिन्दी और जनदीय बोलियाँ' शीर्षक लेख में प्रो. नंद किशोर पाण्डेय का वक्तव्य महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि ''वस्तुतः भाषाओं की एकता का आधार केवल व्याकरण नहीं है। ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक एवं राजनैतिक कारणों से भी भाषाई एकता होती है। ये ही कारण बिखराव के लिए भी उत्तरदायी हैं।'' प्रांतों की सीमाएँ राजनीतिक होती है। राजनैतिक सीमाओं के आर-पार रहने वाले लोगों के सामाजिक, सांस्कृतिक सम्बन्धों में कोई अलगाव नहीं होता। हम सभी अपनी क्षेत्रीय विशेषताओं के साथ राष्ट्रीय चरित्र सहधर्मिता और सहजीविता के कारण विविधता में एकता को स्थापित करते हैं। मूल रूप से हम चाहे जिस जातीय समूह से सम्बन्ध रखते हों किंतु भारतीय वातावरण में विकसित होने के कारण भारतीय हैं।

पूर्वोत्तर के समुदायों में रहन-सहन, रीति-रिवाज, भाषा-बोली में वैविध्य होने के बावजूद भारतीयता के सूत्र उसी प्रकार देखे जा सकते हैं। आज पूर्वोत्तर भारत के अधिकांश भाषाओं के साथ राष्ट्रीय स्तर पर सर्वाधिक बोली समझी जाने वाली सम्पर्क-भाषा हिन्दी का सम्बन्ध उसी प्रकार है। अधिकांश भाषाओं में हिन्दी के शब्द और हिन्दी में इनके शब्दों का प्रवेश हो रहा है। एक प्रकार से कहा जाये तो भाषा की नई शैलियों का विकास हो रहा है।

भाषा में सतत् विकास की प्रक्रिया चलती रहती है। इसीलिए प्रत्येक युग में व्यवहार की भाषा मानक भाषा से थोड़ा बहुत विचलन लिए हुए होती है। पूर्वोत्तर की भाषाओं में भी सहजीविता और सहधर्मिता के कारण ही हिन्दी शब्दों का प्रवेश दिखाई देता है। 2011 की जनगणना में हिन्दी के अंतर्गत आने वाली भाषाओं की संख्या 49 गिनाई गई है। जिसे ध्यान में रखते हुए उपरोक्त तथ्यों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि एक दिन ऐसा आयेगा जब हिन्दी की 200 भाषाएँ होंगी और यह केवल भाषा ही नहीं बल्कि भारतीय संस्कृति की मूल प्रवृत्ति है। 'सब पलें-सब बढ़ें' की भावना के साथ सबका समान सम्मान और अधिकार भारतीय बहुलतावादी संस्कृति का मूल आधार है।

-प्रो. हितेंद्र कुमार मिश्र
हिन्दी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी
के नवीनतम प्रकाशन के साथ पाठकगण

मात्रा पतन की स्वीकार्यता : कुछ सवाल

डॉ. राम गरीब पाण्डेय 'विकल'

दुनिया की जितनी भी भाषाएँ हैं, उनका मानक स्वरूप निर्धारित होने के पूर्व उनका स्वरूप बोलियों का होता है। उन्हीं बोलियों के बहुतायत में प्रचलित और बहुलता में मान्य शब्दों को सहेजकर किसी भाषा का एक मानक स्वरूप तैयार होता है। इसके पश्चात जब वह भाषा साहित्य सृजन का साधन बनती है, तब उसके व्याकरणिक स्वरूप का निर्धारण होता है। साहित्य सृजन की बात की जाय, तो प्राय: हर बोली या भाषा में साहित्य सृजन की शुरूआत काव्य से ही होती है। भाषा के मानक स्वरूप का निर्धारण करने से लेकर, काव्य भाषा तक में लोक-व्यवहृत पद्धति का अपना प्रभाव सर्वत्र दिखाई देता है। यही कारण कहा जा सकता है, कि अनेक बार व्याकरण द्वारा निर्धारित मानदण्डों से बाहर रहकर भी शब्दों का उच्चारण व्यवहार में देखने को मिलता है। इन बातों को भाषाविज्ञान के ध्वनि प्रकरण में विस्तार से विश्लेषित किया गया है।

लोक-व्यवहार में अनेक शब्द कई बार मुख-सुख के कारण, तो कई बार प्रयत्न-लाघव के कारण अपना रूप बदलते हैं और भाषा के विकास की अवधारणा को पुष्ट करते हैं। यही कारण है कि अनेक शब्दों का स्वरूप, उच्चारण बलाघात के कारण परिवर्तित हो जाता है। इन परिवर्तित शब्दों में देशज-मानक शब्दों के साथ ही अन्य भाषा से आये हुए शब्द भी समाहित होते हैं। उदाहरण के रूप में मालूम और दूकान शब्दों को लें। लोक-व्यवहार में इनका उच्चारण क्रमश: मालुम और दुकान के रूप में होता है। यद्यपि हमें पता होता है कि मालुम और दुकान उच्चारण या प्रयोग सही नहीं हैं फिर भी हम इसे स्वीकार करते हैं। इतना अवश्य है कि लिखित रूप में यह मालूम और दूकान ही रहते हैं। इस प्रकार 'लू' और 'दू' की दीर्घ मात्राओं का उच्चारण जब लघु रूप में होता है तब यह मात्रा-पतन का उदाहरण प्रस्तुत करता है। भारत देश में अनेक क्षेत्रीय भाषाओं-बोलियों में काव्य रचना हो रही है, किन्तु व्यापक स्तर पर काव्य-रचना में हिन्दी भाषा ही प्रमुख माध्यम है। हिन्दी भाषा की यह उल्लेखनीय सामर्थ्य है कि अन्य भाषायी शब्दों को भी इसने सहजता से आत्मसात कर लिया है। यही वजह है कि आज हिन्दी में काव्य की अनेकानेक विधाओं के साथ ही, गजलों का सृजन भी उतनी ही उदारता के साथ हो रहा है। गजल विधा के व्याकरण (अरूज) में मात्रा-पतन की सुविधा स्वीकार्य होती है। गजल चूँकि हिन्दी में भी कही या लिखी जा रही है, तो बहुत स्वभाविक है कि हिन्दी गजल में भी मात्रा-पतन की इस सुविधा का प्रयोग किया जाएगा। किन्तु जब मात्रा-पतन की यही सुविधा हिन्दी गीतों या अन्य विधाओं में लेने की बात आती है, तब अनेक विद्वान इसे सिरे से नकार देते हैं। इसके लिए भाषा के गद्य एवं पद्य दोनों ही प्रकार के साहित्य की पड़ताल करने की आवश्यकता समझ में आती है।

हिन्दी साहित्य के गद्य का विकास उसके आधुनिक काल में हुआ, किन्तु उसके पूर्व ही पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) जिसे हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग भी कहा जाता है, में हिन्दी काव्य ने एक ऐसी आधारशिला रखी जिस पर हमें आज भी गर्व होता है। इसी काल में मीराबाई, कबीर, सूरदास, तुलसीदास जैसे अनेक ऐसे रचनाकार हुए, जिनका काव्य आज भी हमारा ध्यानाकर्षण कराने में सक्षम है। इसलिए संक्षेप में ही सही, इनके काव्य पर दृष्टिपात कर लेना उचित प्रतीत होता है। क्रम से एक-एक को देखना समीचीन होगा-

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई (मीराबाई)। मात्र इसी पंक्ति को देखें तो मेरे के 'रे', 'तो' और गोपाल के 'गो' का मात्रा पतन स्पष्ट दिख रहा है।

कुछ उदाहरण तुलसीदास के विश्वप्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचरित मानस' से दृष्टव्य हैं-

"एहिं बिधि रहा जाहि जस भाऊ" या
"एहिं बिधि सो दच्छिन दिसि जाई" या
"राम को रूप निहारति जानकी....." (कवितावली)

यहाँ पहली दोनों ही चौपाइयों में प्रयुक्त 'एहिं' में 'ए' का मात्रा-पतन हुआ है, तो तीसरे उदाहरण में 'को' और जानकी के 'की' का मात्रा-पतन हुआ दिखता है। यहाँ यह बात ध्यान रखने योग्य है, कि तुलसी के समूचे काव्य में मात्रा-पतन के अनगिनत उदाहरण विद्यमान हैं।

उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) से भी एक उदाहरण देख लिया जाए -

"अति सूधो सनेह को मारग है, जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं"। घनानन्द की इस एक ही पंक्ति में सूधो के 'धो', 'को', जहाँ के 'हाँ' का मात्रा-पतन साफ-साफ दिख रहा है।

कतिपय विद्वानों का यह तर्क है कि आधुनिक काल के पूर्व का काव्य बोलियों का काव्य है, अत: इसे हिन्दी के सन्दर्भ में मात्रा-पतन के लिए उदाहरण नहीं माना जा सकता। यहाँ दो बातें विचारणीय हो जाती हैं। पहली यह, कि क्या बोलियों को अलग करने के बाद किसी भी भाषा को पूर्ण कहा जा सकेगा? दूसरी यह कि 'रामचरित मानस' हिन्दी काव्य परम्परा की रीढ़ है, उसे हिन्दी काव्य की गणना से बाहर रखकर क्या हम हिन्दी की काव्य परम्परा को समझ सकेंगे? इसके बावजूद उनके तर्कों को ध्यान में रखते हुए आधुनिक काल के प्रतिष्ठित काव्यों पर भी दृष्टिपात करने में कोई बुराई नजर नहीं आती। इसलिए राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त के बहुचर्चित एवं प्रतिष्ठित काव्य 'यशोधरा' की कतिपय पंक्तियाँ अवलोकनीय हैं-

"ढलक न जाय अर्घ्य आँखों का, गिर न जाय यह थाली" या
"भाग्य आयँगे फिर भी भागे, चुप रह, चुप रह, हाय अभागे!"

इसी प्रकार पायँगे, लायँगे, जायँगे, दिखलायँगे जैसे शब्द जो क्रमश: पायेंगे, लायेंगे, जायेंगे, दिखलायेंगे की जगह प्रयोग किये गये हैं,

भी मात्रा पतन के उदाहरण के रूप में देखे जा सकते हैं। भाषा की प्रांजलता के लिए विख्यात छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद का 'कामायनी' हिन्दी काव्य-जगत का उत्कृष्ट कोटि का महाकाव्य माना जाता है। एकाध उदाहरण वहाँ से भी देखना उचित होगा-

"आँसू औ' तम घोल लिख रही तू सहसा करती मृदुहास" (आशा सर्ग), "जलधि के फूटें कितने उत्स-द्वीप कच्छप डूबें उतरायँ" (श्रद्धा सर्ग)

उपर्युक्त दोनों उदाहरण में क्रमशः और के लिए 'औ' का प्रयोग तथा उतरायें के लिए 'उतरायँ' का प्रयोग मात्रा-पतन की ओर स्पष्ट संकेत करते दिखते हैं।

यहाँ जितने भी उदाहरण दिये गये हैं और स्थानाभाव के कारण जो नहीं दिये जा सके, सब में एक बात की ओर ध्यान दिया जाना आवश्यक प्रतीत होता है और वह है - कतिपय अपवादों को छोड़कर मात्रा-पतन 'ए' और 'ओ' का ही हो रहा है। इसके कारण पर विचार करने पर हम पाते हैं, कि लोक व्यवहार में 'ए' और 'ओ' ध्वनियों के लघुरूप को उच्चारण में स्वीकार किया जा चुका है, किन्तु देवनागरी लिपि में इनके लघुरूपों को लिखने की कोई व्यवस्था नहीं है। ऐसी दशा में जब इनके लघुरूपों का प्रयोग होता है, तब वह मात्रा-पतन की श्रेणी में स्वयमेव चला आता है। इसके लिए काव्यभाषा से बाहर आकर सामान्य बोलचाल की भाषा का भी अवलोकन करना उचित होगा। हमारे हिन्दी शब्द भण्डार में अनेकानेक तत्सम, तद्भव एवं अन्य भाषायी शब्द विपुल परिमाण में पाये जाते हैं, जो लिखित रूप में तो व्याकरण की दृष्टि से गुरु हैं, किन्तु उच्चारण बलाघात के कारण वह लघु हो जाते हैं। कतिपय शब्द मात्र दृष्टान्त के रूप में नीचे दिये जा रहे हैं।

केदार, कोटवार, कोतवाल, कोयला, खेतिहर, चोरकट, गोलाई, गेहुँआ, जोड़ाई, जेठानी, देवरानी, डोलची, घोटाला, ढोलकिया, लोहिया, लोहानी, सोनार, लोहार, चेहरा, मेहनत, मेहमान, मोहल्ला आदि। इसी तरह के शताधिक शब्द सूचीबद्ध किये जा सकते हैं। यहाँ सूचीबद्ध शब्दों में पहला ही शब्द 'केदार' संस्कृत भाषा का है। मात्रा गणना के नियमानुसार इसका मात्राभार ऽ ऽ । (गुरु गुरु लघु या 2 2 1) होगा, किन्तु उच्चारण विधि के अनुसार इसका मात्राभार सदैव । ऽ । (लघु गुरु लघु या 1 2 1) लिया जाता है। इसी प्रकार सूचीबद्ध एवं सूची में न लिये गये अनेकानेक शब्दों का भी मात्राभार लिखित में गुरु होने के बाद भी उच्चारण बलाघात के कारण लघु लिया जाता है।

कतिपय विद्वान मात्रा-पतन का सम्बन्ध सीधे गजल और उर्दू से जोड़ने के पक्षधर मिलते हैं। यहाँ मेरा ऐसा विचार है कि मात्रा-पतन किसी भाषा का नहीं अपितु भाषाविज्ञान का मामला मानना अधिक प्रासंगिक लगता है। मात्रा-पतन को गजल के विधान में भी बहुत अच्छा नहीं माना जाता है, तो हिन्दी में भी उसके प्रयोग से बचना ही उचित है। इसी बात को इस तरह भी कहा जा सकता है, कि मात्रा-पतन को अधिकार के रूप में नहीं सुविधा के रूप में देखा जाना चाहिए। इस सबके बावजूद जैसे गजल विधा में कहीं-कहीं मात्रा-पतन की अनिवार्यता (जैसे कामिल बह्र में) हो जाती है, उसी प्रकार हिन्दी काव्य में भी, कई बार यह अपरिहार्य हो जाता है। इसके पीछे एक तो लोक प्रचलित शब्दों का परिवर्तित रूप होता है, तो भाव के अनुरूप आ रहे शब्द का विस्थापन भी कई बार काव्य-सौन्दर्य में बाधक बनता है। एक बात और भी उल्लेखनीय है। मुक्तछन्द कविता के अतिरिक्त काव्य की प्रायः हर विधा किसी न किसी छन्द में आबद्ध होती है, इसीलिए गेय भी होती है। गेयता का सीधा सम्बन्ध लयात्मकता से है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए कतिपय विद्वानों ने छन्द के वार्णिक व मात्रिक के अतिरिक्त लयात्मक छन्द भेद का भी उल्लेख किया है। अंगेजी साहित्य में इसी को "लिरिकल पोएट्री" कहा गया है। गेयता के पैमाने पर जब काव्य को रखा जाता है, तब वहाँ स्वर के अतिरिक्त ताल का भी ध्यान रखना पड़ता है। ताल जो मात्राओं पर ही निबद्ध होते हैं, उनके अनुरूप काव्य की मात्राओं में पतन की आवश्यकता भी होती है।

इस बात को विराम लगाने के पूर्व एक और बात की चर्चा करना आवश्यक लग रहा है। गजल हो या गीत या काव्य की अन्य कोई विधा, मात्रापतन की बात पर यदाकदा चर्चा हो ही जाती है, किन्तु मात्रा-विस्तार की बात कोई नहीं करता। बहुत सीमित ही सही किन्तु काव्य में मात्रा विस्तार होते भी देखा जाता है। लोकभाषाओं के काव्य में तो इसे बहुतायत में देखा जा सकता है। जैसे- 'कइसन के जिउ बाँची आसौं के ठार म' में 'म' का उच्चारण दीर्घ होता है, किन्तु इस प्रकार के कथनों में इसका लिखित रूप सदैव लघु ही होता है। इसी प्रकार के अनेकानेक उदाहरण भरे पड़े हैं। जब बात हिन्दी की आती है, तब वहाँ 'न' एक ऐसा अक्षर या शब्द है जिसका प्रयोग उच्चारण में लघु एवं गुरु दोनों ही रूपों में होता है जबकि यह लिखा लघु ही जाता है। एक फिल्मी गीत का स्मरण उदाहरणार्थ किया जा सकता है- 'न बोले न बोले न बोले रे। घूँघट के पट न खोले रे।' इस गीत को 'ना बोले ना बोले ना बोले रे' के रूप में हम सुनते हैं। कई बार कुछ जगह जब इसका गुरु रूप 'ना' लिखित में मिलता है तब यह खटकता भी है।

समग्रता में देखा जाय, तो किसी भी छन्द के लिए निर्धारित मानदण्डों से इतर एवं व्याकरण से असम्मत प्रयोग, काव्य में दोष की श्रेणी में परिगणित किये जाते हैं, किन्तु कहीं-कहीं यही दोष काव्य की लयात्मकता, गेयता और काव्य के सौन्दर्य के लिए जब उपयोगी या सहायक होते हैं, तो यही गुण भी बन जाते हैं। इस तरह के प्रयोग, हिन्दी काव्य के साथ ही गजलों में भी बहुप्रचलित हैं। एक उदाहरण से इसे समझा जा सकता है -

भूलकर सीमा बहें नदियाँ तमाम, देखते बेबस मुहाने हो गये।

इस शेर के अरकान हैं- 'फाइलातुन फाइलातुन फाइलुन'। पहली पंक्ति (मिसरे) में प्रयुक्त 'तमाम' का अन्तिम अक्षर 'म' अन्तिम रुक्न 'फाइलुन' के अतिरिक्त है, किन्तु इसे दोष नहीं माना जाता। इस तरह के प्रयोगों पर हमारे पौर्वात्य आचार्यों ने वक्रोक्ति सिद्धान्त के अन्तर्गत विचार करते हुए, इसे 'विपथन' नाम दिया है, किन्तु साथ ही यह भी निर्देश दिया गया है, कि यह विपथन काव्य-सौन्दर्य या बाँकपन का हेतु बने तभी अनुमत्य है।

-डॉ. राम गरीब पाण्डेय 'विकल'
वाटर फिल्टर प्लांट के सामने
तुलसीनगर नौढ़िया, सीधी म.प्र.-486661

हिन्दी चिरंजीवी भव

बहुधा यह माना जाता है कि जिस भाषा को सरकारी संरक्षण हासिल होता है वह भाषा ज्यादा फलती फूलती है एवं प्रगति करती है और इसी कारण से हममे से जायदातार लोग सरकार को कोसते भी रहते हैं कि सरकार हिन्दी भाषा की प्रगति में अपना योगदान नहीं दे रही है। हालांकि यह सत्य नहीं है। सरकार हिन्दी भाषा के संवर्द्धन एवं पोषण पर करोड़ो रुपये खर्च करती है। केंद्र के अंतर्गत एक पूरा हिन्दी निदेशालय है। हरेक कार्यालय में हिन्दी अधिकारी नियुक्त हैं, संसदीय समिति बनी है और न जाने कितनी ही समितियां इस हेतु कार्यरत है, जिसपर सरकार बहुत ही भारी राशि खर्च करती है।

यहीं एक प्रश्न भी प्रासंगिक हो उठता है कि हम हिन्दी हृदय प्रदेश के निवासी इस हेतु क्या कर रहे हैं? जहाँ एक ओर हम सरकार को हिन्दी को बढ़ावा नहीं देने के लिए कोसते हैं, वही दूसरी ओर हम यह सुनिश्चित करते हैं कि अपने बच्चों को अँग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में ही पढ़ाया जाये एवं इसके लिए अनेक तरह के कष्ट भी उठाने के लिए तैयार रहते हैं। अपने बच्चों से अँग्रेजी में गिट-पिट भी करते हैं ताकि वे अँग्रेजी के चैम्पियन हो सकें और इसके लिए सामान्य रूप से तर्क यह दिया जाता है कि चूंकि अँग्रेजी में रोजगार के ज्यादा अवसर उपलब्ध हैं इसलिए हम ऐसा करते हैं। हिन्दी हृदय प्रदेश में अगर हम देखें तो सामान्य रूप से रोजगार का अर्थ सरकारी नौकरियों से ही लगाया जाता है। विडम्बना यह देखिये कि ज्यादातर सरकारी नौकरियाँ वैसे बच्चे ले उड़ते हैं, जो ग्रामीण परिवेश से आए हुये होते हैं, जिनके माँ-बाप अँग्रेजी तो छोड़िए ठीक-ठीक हिन्दी भी नहीं बोल पाते हैं।

कोई भी भाषा कैसे विस्तार पाती है एवं दीर्घायु होती है? दरअसल भाषा अपने भीतर की आंतरिक शक्तियों, लचीलापन, वैज्ञानिकता , बोलने वाले के भाषा के प्रति प्रेम एवं उस भाषा में मौजूद ज्ञान के भंडार के आधार पर ही आगे बढ़ती है, जीवित रहती है एवं दीर्घायु होती है। भाषा की यह विशेषता है कि वह परिवर्तनशील होती है। जो भाषा परिवर्तन के प्रति दुराग्रही होती है वह भाषा मर जाती है। भाषा का मर जाना कोई बहुत ही प्रलयंकारी प्रभाव उत्पन्न नहीं करता है बल्कि समय के एक लंबे अंतराल में यह एक सामान्य सी बात ही है। भाषा का लंबे समय तक जीवित रहना उस भाषा की सुग्रहणशीलता एवं परिवर्तन के सापेक्ष उसकी सुग्राह्यता को प्रदर्शित करता है। उदाहरण के लिए अँग्रेजी भाषा को ही देखा जा सकता है। क्या जो अँग्रेजी आज से पांच सौ वर्ष पूर्व लिखी जा रही थी आज भी वही अँग्रेजी लिखी जा रही है? उत्तर है नहीं, अँग्रेजी में तब से आज तक बहुत परिवर्तन आ चुका है। शेक्सपियर के समय से भी देखें तो भी अँग्रेजी में बहुत ही परिवर्तन आ चुका है। भाषा, व्याकरण के कई स्तरों पर अँग्रेजी में परिवर्तन आए हैं।

नीरज नीर

मौर्य वंश के शासन काल में पालि भाषा को सरकारी संरक्षण दिया गया। पालि ही राजकाज की भाषा थी। पालि भाषा बौद्ध धर्म से संबन्धित थी, क्योंकि बुद्ध ने उसी भाषा में अपने उपदेश दिये थे। इसलिए तब इसका राजनीतिक एवं धार्मिक दोनों महत्व था। लेकिन बुद्ध धर्म के क्षीण होने एवं मौर्य वंश के पतन के उपरांत ही पालि भाषा का भी क्षय हो गया। ऐसा ही हम देख सकते हैं फारसी के संबंध में भी हुआ। मुगल काल में फारसी भाषा राज-काज की भाषा थी। इसलिए इस दौरान फारसी भाषा इस देश में बहुत फली फूली। एक समय ऐसा था कि फारसी भाषा जानने वालों को बड़ी सामाजिक प्रतिष्ठा हुआ करती थी साथ ही सरकारी रोजगार की गारंटी भी मिलती थी।इसीलिए एक कहावत भी उस दौरान प्रचलित हुई कि "पढ़े फारसी बेचे तेल"। कहने का अर्थ यह कि जिसने फारसी पढ़ी हो उससे सामाजिक रूप से किसी प्रतिष्ठित कार्य करने की ही आशा की जाती है। लेकिन मुगल साम्राज्य के पतन के साथ ही इस भाषा का पतन हो गया। आज फारसी पढ़ने लिखने वालों की संख्या इस देश में गिनी चुनी ही रह गयी है।

इससे यह तो स्पष्ट है कि कोई भी भाषा जो अगर सिर्फ सरकारी संरक्षण के भरोसे आगे बढ़ेगी वह संरक्षण की अवधि तक तो बढ़ेगी लेकिन संरक्षण के पश्चात उसका पतन हो जाएगा। सरकारी संरक्षण हासिल भाषाओं की स्थिति गमले के फूलों सदृश हो जाती है। जरा सा पानी घटा तो सूख जाएगी। लेकिन जो भाषा अपनी आंतरिक शक्तियों से आगे बढ़ती हैं एवं अपने परिवेश से शक्तियाँ ग्रहण करती है वह भाषा वटवृक्ष की भांति अनेक जड़ों वाली होकर दीर्घायु होती है।

आज हिन्दी भाषा अपनी सर्वग्राह्यता की शक्तियों के कारण फल फूल रही है, वरना राज भाषा अधिकारियों ने जिस हिन्दी का आविष्कार किया, उससे तो हिन्दी स्वयं ही डूब कर मर जाएगी। राज भाषा अधिकारियों ने हिन्दी को अनुवाद की भाषा बना कर रख दिया। जब तक किसी भी भाषा में मौलिक रूप से सोचा नहीं जाएगा, विचारा नहीं जाएगा तब तक उस भाषा के आगे बढ़ने की संभावना क्षीण ही होगी। अगर आज लोग अँग्रेजी पढ़ना चाहते हैं या उन्हें लगता है कि अँग्रेजी पढ़ने से उनका भविष्य उज्ज्वल होगा तो इसके पीछे क्या कारण है? इसके पीछे कारण है अँग्रेजी भाषा में मौजूद आधुनिक ज्ञान भंडार। वैज्ञानिक, आर्थिक, राजनैतिक खोज एवं चिंतन की अँग्रेजी में मौजूदगी अँग्रेजी को किसी भी अन्य भाषा से बढ़त देती है।

शेष पृष्ठ संख्या 43 पर

लोक साहित्य : सरोकार और संवेदनाएं

बृजेश प्रसाद

भारत में लोक साहित्य की परंपरा अत्यंत प्राचीन है । लोक साहित्य जनता का वह साहित्य है, जो जनता के द्वारा जनता के लिए लिखा जाता है । लोक साहित्य 'लोक' और 'साहित्य' दो शब्दों से मिलकर बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'लोक का साहित्य' । लोक साहित्य का क्षेत्र बहुत व्यापक है । लोक साहित्य में लोक जीवन का जितना विस्तार है, जितना जीवन है, लोक साहित्य का भी उतना ही जीवन और विस्तार है । लोक साहित्य समस्त जातियों की परम्पराओं, रीति-रिवाजों, रुढियों, अंधविश्वासों, लोकगीतों, लोक कथाओं, लोक नाटकों कहावतों तथा उन मान्यताओं का साहित्य है, जो मौखिक रूप से बौद्धिक सम्पति के रूप में एक मनुष्य को दूसरे से किसी कृतज्ञता के बिना प्राप्त होता है । जिसका संरक्षण करना वह अपना कर्तव्य समझता है । इस तरह लोक में पीढ़ी दर पीढ़ी अर्जित सम्पत्ति के साथ आगे चलता रहता है । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते है- "लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है, बल्कि नगरों या ग्रामों में फैली हुई समूची जनता है, जिसके व्यवहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है । ये लोग नगर में, परिष्कृत रुचि संपन्न तथा सुसंस्कृति समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृतिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारिता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती है, उनको उत्पन्न करते है ।" (जनपद, अंक 1952, पृष्ठ 65)

लोक साहित्य लोक जीवन के उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो अपनी प्राचीन मान्यताओं, विश्वासों और परम्पराओं के प्रति आस्थावान है । मसलन कहा जाये तो लोक साहित्य मूलत: लोक की मौखिक अभिव्यक्ति है, जो सम्पूर्ण जीवन का नेतृत्व करती है । अत: लोक जीवन की अभिव्यक्ति को वाणी देना ही लोक साहित्य है।

लोक साहित्य लोक जीवन की अभिव्यक्ति है, वह जीवन से घनिष्ठ रूप से सम्बंधित है । डॉ. केसरी नारायण शुक्ल कहते हैं कि- "लोक-साहित्य मानवता का पालना है । लेखन से पहले की मानवता की संस्कृति का अमूल्य भंडार है जिसमें धर्म, दर्शन, अध्यात्म, संस्कार, कर्मकांड, काव्य, नृत्य, गान आदि सभी पलते, झूलते और खेलते रहे हैं, जो इन सबका समन्वित कलात्मक रूप है ।" (डॉ. केसरी नारायण, रूसी लोक साहित्य, भूमिका)

इस तरह देखा जाये तो लोक साहित्य समग्र लोक राग-विराग, हर्ष-विषाद, सुख-दु:ख की सहज अभिव्यक्ति है । इसलिए यह कहना अतिरंजित नहीं होगा कि लोक साहित्य सर्वव्याप्त है । लोक साहित्य जितना प्रादेशिक है, उससे भी अधिक वह राष्ट्रव्यापी है । यह सम्पूर्ण मानव जाति की विरासत का साम्य है । राजनीति भले ही विश्व के अनेक देशों को लक्षण रेखा में विभाजित करती है, लेकिन लोक साहित्य शुद्ध राजनीति की इस प्रकार की विभाजन रेखा को स्वीकार नहीं करता है । वह समस्त मानव जाति का समान विरासत में सामान एकता के रूप में विद्यमान है ।

सरोकार और संवेदनाएं

लोक साहित्य की युगों-युगों की लम्बी यात्रा के मध्य न जाने कितनी परम्पराएँ बनीं और मिटी, समाज में न जाने कितने परिवर्तन हुए, मान्यताएं बदलीं, आस्थाएं बदलीं, विचारधाराएँ बदली किन्तु लोक साहित्य के प्रति लोक-मानव की आस्था में तनिक भी कमी नहीं आई । वह निरंतर पल्लवित और पुष्पित होती रही है । लोक साहित्य में सदैव लोक जीवन और लोक भावनावों को सम्मान दिया गया है । लोक की भाषा को ही अभियक्ति का माध्यम बनाया गया है, यही कारण है कि अलिखित और मौखिक परंपरा होते हुए भी लोक मानव लोक साहित्य के प्रति सच्ची भावना से आस्थावान हैं ।

वर्तमान समय में अगर लोक साहित्य में अभिव्यक्त सरोकार और संवेदना पर जब हम बात करते है तो यह जानना जरूर हो जाता कि आज के सन्दर्भ में लोक साहित्य का सरोकार क्यों इतना महत्वपूर्ण है और वह उस लोक साहित्य में संवेदना कैसे जुड़ी हुई है । अत: लोक साहित्य के अंर्तगत लोकगीत, लोकगाथा, लोकनाट्य, लोककथा आदि के माध्यम से हम लोक साहित्य के सरोकार और उसमें अभियक्त संवेदना को देखने की कोशिश करेंगें-

लोकगीत

लोक साहित्य के अंतर्गत लोकगीतों का प्रमुख स्थान है । जन जीवन में अपनी प्रचुरता तथा व्यापकता के कारण इनकी प्रधानता स्वाभाविक है । लोकगीत की सरोकार की बात करे तो आदिकाल में जब सामाजिक चेतना का विकास हो रहा था, तब ऐसे गीतों का जन्म हुआ जिसका सम्बन्ध जीवन से था । धीरे-धीरे मानव प्रकृति पर विजय पाने लगा । अत: उसके गीतों में विजय का उल्लास अभियक्त होने लगा । परन्तु मानव प्रकृति के विकराल रूप से परास्त हुआ और उसका सामना करने का साहस उसमें कालांतर में उतपन्न हुआ । तब उसने संगठन का मूल्य जाना और तब उसे सामाजिकता की आवश्यकता महसूस हुई । यही कारण है कि आदिकाल के गीतों में मानव की सामूहिक भावनाएं अभिव्यक्त हुई है । विभिन्न ऋतुओं एवं उत्सवों पर गए जाने वाले गीतों में मानव के मानव के सामूहिक श्रम, उल्लास एवं संघर्ष की कथाएं ही हैं । आज भी लोक में प्रचलित जाति गीत, विरहा, सावन गीत, शादी-विवाह के गीत के माध्यम से लोक अपनी संस्कृति से जुडी हुई है । आज हम जितना भी आधुनिक हो जाये जब अपने लोक की बात आती है उसका जिक्र आता है तो मन प्रफुल्लित हो उठता है । तब हम अपना तारतम्यता उस लोक से जोड़ कर उस संस्कृति को अपनाता है ।

लोकगाथा

लोकगाथाओं का सामान्य परिचय देते हुए एक प्रश्न उत्पन्न होता है कि संसार भर में प्राप्त लोक कथाओं की उत्पत्ति के विषय में कौन सा सिद्धांत कार्य करता रहा होगा ? इस प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व यह तो मोटे तौर पर माना जाता है कि यह मानव समाज का आदिम साहित्य रूप है । सामूहिकता नृत्य-गीतों के साथ आगे चलकर पौराणिक पात्रों या देवी देवताओं से सम्बंधित गाथाएं भी जुड़ गई । इस प्रकार नृत्य-गीतों से समाविष्ट पौराणिक इतिवृत युक्त स्वरुप ही लोकगाथाओं के निर्माण का मूल रूप कहा जा सकता है । कालान्तर में नृत्य, संगीत और गाथा इन तीनों कलारूपों का स्वतंत्र रूप से पृथक-पृथक विकास शुरू हुआ । आज भी देखा जाये तो मौखिक रूप में चली आ रही ऐसे कई कथा कहानियाँ हैं जो हमारे अतीत का चित्र प्रस्तुत करती हैं । उन कहानियों के माध्यम से हम जान पाते हैं कि लोक जीवन कितना सहज-सरल हुआ करता था । जैसे की हम जानते हैं शुरूआती दौर में लोक में अत्यंत पिछड़े जाति के लोग थे, जिन्हें पोथी तक छूने का अधिकार नहीं था वह अपनी गाथा मौखिक रूप में ही अपने समाज में कहते और सुनते-सुनाते थे । इस प्रकार देखा जाये तो लोकगाथा में हमें उस समय के समाज में व्याप्त अच्छाइयों के साथ-साथ उस समय की कुरीतियाँ, रुढ़िवादिता आदि को भी लोक गाथाओं में व्यक्त किया गया । आज हम भले ही कितने भी आधुनिक हो जायें हमें एक समय के बाद अपने लोक के सरोकार और संवेदना से जुड़ना ही होगा । क्योंकि लोक हमारा अतीत, वर्तमान और भविष्य है ।

लोकनाट्य

मानव की उत्पत्ति के साथ ही लोकनाट्य के उदभव की कड़ी जुडी हुई है । यह हमारी नाटी परंपरा का मूल का उत्स है । भारत ही नहीं, विश्व भर नाट्य की परंपरा रही है । प्रत्येक देश की लोकनाट्य की अपनी परंपरा है । भारतीय लोकनाट्य की परंपरा विभिन्नता में एकता के हित को चरितार्थ करती है । लोकनाट्य लोक जीवन का एक ऐसा माध्यम था और है जो शिक्षित से लेकर अशिक्षित सभी को आपने से जोड़ती है । इसलिए लोक में अगर देखा जाये तो जो लोकनाट्य है वह हमारे इतिहास के बहुत करीब महसूस होते है । हर राज्य के लोक नृत्य भी होते है जो किसी अनुष्ठान पर मनोरंजन के लिए किये जाते है । रामलीला से लेकर कृष्णलीला तक आदि लोकनाट्य आज भी समाज को एक नयी दिशा दिखाने का कार्य करते हैं ।

लोककथा

लोक में मौखिक परंपरा से चली आने वाली कथाएं लोककथा कहलाती है । लोककथा किसी हृदय-स्पर्शी घटना पर मानव अनुभूति का सच्चा उद्रेक है । इसमें मानव मन की काल्पनिक उड़न भी और हृदय की सच्ची अनुभूति भी । शिक्षित वर्ग की अपेक्षा अशिक्षित और रूढ़िवादी वर्ग ने इसे अधिक अपनाया है । अत: देखा जाये तो लोककथाएं वे कहानियां हैं जो मनुष्य की कथा प्रवृत्ति के सतत् चलकर विभिन्न परिवर्तनों एवं परिवर्धनों के साथ वर्तमान रूप में प्राप्त होती है । यहाँ सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि कुछ निश्चित कथानक रूढ़ियों और शैलियों में ढली लोककथाओं के अनेक संस्करण उसके नित्य नयी प्रवृत्तियों और चरित्रों से युक्त होकर विकसित हुए है ।

प्रकीर्ण साहित्य

प्रकीर्ण साहित्य को कुछ लोग सुभाषित भी कहते है । ग्रामीण जनता अपने दैनिक व्यवहार में सैकड़ों मुहावरों, कहावतों पहेलियाँ, सूक्तियों और सुभाषितों का प्रयोग करती है । इन मुहावरों और कहावतों में चिरसंचित अनुभूति ज्ञानराशि भरी पड़ी है । इनके अध्ययन और विश्लेषण से हमारी सामाजिक और धार्मिक प्रथाओं का चित्रण उपलब्ध होता है । कुछ ऐसी भी सूक्तियाँ उपलब्ध होती हैं, जिनमे नीति के वचन कहे गये हैं । घाघ और भड्डरी की सूक्तियों में ऋतुज्ञान की बहुमूल्य सामग्री पाई जाती है । खेती और वर्षा के सम्बन्ध में घाघ की जो उक्तियाँ प्रसिद्ध हैं, उनमें सहानुभूति की मात्रा अधिक होती है आदि ऐसे कई उदहारण है ।

इस प्रकार देखा जा सकता है कि लोक-साहित्य का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है । लोक का जितना जीवन है, जितना विस्तार है, लोक साहित्य का भी उतना ही जीवन और विस्तार है । लोक साहित्य समस्त जातियों की परम्पराओं, रीति-रिवाजों, रूढ़ियों, अंधविश्वासों, लोकगीतों, लोक कथाओं, लोक नाटकों, मुहावरों, कहावतों तथा उन मान्यताओं का साहित्य है । जो मौखिक रूप में और अब लिखित रूप में भी हमारे बीच आ रहा है । अत: मनुष्य ने अब तक जो कुछ किया उसका वर्णन तो इतिहास में होता ही है, लेकिन अपने मनोजगत में उसने जो कुछ-विचारा, रंगीन कल्पनाएँ बुनी, सुन्दर सपना संजोये, उन सबका लेखा-जोखा लोक साहित्य में सुरक्षित है । लोक साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि इसमें लोक का वास्तविक रूप प्रकट होता है । इसका कारण है कि इसके रचयिता किसी उद्देश्य विशेष को न लेकर अपने स्वाभाविक रूप को प्रकट करता है । अत: लोक गीतों, लोक गाथाओं, लोक कहानियों, कहावतों, पहेलियों आदि सभी में लोक का रहन-सहन, खान-पान, आचार-व्यवहार, प्रेम, वात्सल्य, करुणा और विश्वास इन सबका स्वाभाविक आंकलन देखने को मिल जाता है ।

इस प्रकार लोक-साहित्य की व्यापकता मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक तथा स्त्री, पुरुष, बच्चे, बूढ़े सभी लोगों की सम्मिलित सम्पत्ति है । अत: इस प्रकार लोक साहित्य का सरोकार और संवेदना के विषय लोक जीवन, लोक-संस्कृति, लोक-परंपरा और प्रथाओं का समावेश होता है । तो इसके अंतर्गत आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, पौराणिक, नैतिक, भाषा-शास्त्रीय जैसे विषयों का समावेश होता है । लोक साहित्य में भौगोलिक एवं आर्थिक दशा का भी समावेश

होता है । लोक-गीतों तथा लोक-कथाओं में प्रत्युक्त शब्दों द्वारा तात्कालिक समाज की अर्थव्यवस्था से लेकर सामाजिक संरचना की जानकारी प्राप्त होती है । लोक-कथाओं एवं लोक-गीतों में समाज का वर्णन अत्यधिक देखने को मिलता है । जिससे समाज के मनुष्यों का रहन-सहन, आचार-विचार, खान-पान, रीति-रिवाज, मान्यताएं, रुढ़ियों और लोक-विश्वास आदि का पता चलता है ।

इस प्रकार देखा जाये तो लोक साहित्य का क्षेत्र इतना व्यापक और खुला हुआ है कि जब-जब लोक साहित्य पर चिन्तन-मनन किया जायेगा एक नया विषय सामने उभर कर आएगा । लोक साहित्य नित्य नूतन होता है, हाँ जरूरत बस इतना कि हमें उस लोक से जुड़े रहने की । क्योंकि जब तक हम अपने लोक को समझेंगे नहीं उसकी गहराई तक नहीं जायेंगे, तब तक पूरी तरह हमारा तारतम्यता लोक के साथ स्थापित नहीं हो सकेगा ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- महावीरप्रसाद द्विवेदी : साहित्य की महत्ता प्रेरक निबंध
- डॉ. श्रीराम शर्मा : लोक साहित्य : सिद्धांत और प्रयोग
- डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय : लोक संस्कृति की रूपरेखा
- पूर्णिमा श्रीवास्तव : लोकगीत में समाज
- डॉ. रामविलास शर्मा : लोक साहित्य का लोकतत्व
- डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय : लोक साहित्य की भूमिका

-बृजेश प्रसाद
गुजरात केन्द्रीय विश्वविद्यालय

पृष्ठ संख्या 40 का शेष

लेकिन हिन्दी की स्थिति कहीं से भी चिंताजनक नहीं है। तमाम अवरोधों के बावजूद, हिन्दी भाषा भारत के भाल पर तेज की तरह चमक रही है। विगत कुछ वर्षों में हिन्दी भाषा में उपलब्ध ज्ञान सामग्रियों में पर्याप्त वृद्धि हुई है। एक आंकड़े के अनुसार ऑनलाइन हिन्दी में उपलब्ध सामग्रियों में विगत पाँच वर्षों में 95 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। अगर हिन्दी में आज लोग ज्यादा लिख-पढ़ रहे हैं, हिन्दी में ज्ञान का आदान-प्रदान हो रहा है तो उसके पीछे वैज्ञानिकों एवं इंजीनियरों का महती योगदान है। भाषाविदों या हिन्दी के साहित्यकारों की तुलना में इन युवा वैज्ञानिकों एवं इंजीनियरों का योगदान हिन्दी की दिशा में अधिक है, जिनके परिश्रम के कारण आज हिन्दी में लिखना पढ़ना सरल हो गया और यही कारण है कि मुझ जैसे लोग भी आज हिन्दी में लिख पा रहे हैं। ट्रान्सलिटरेशन की सुविधा के कारण भी हिन्दी में लिखना सरल हो गया है एवं हिन्दी टाइपिंग में अप्रशिक्षित लोग भी हिन्दी में खूब आसानी से लिख पा रहे हैं। कई लोग तो मोबाइल में भी इस सुविधा का लाभ उठा रहे हैं एवं वहीं अपनी छोटी-मोटी रचनाएँ लिख ले रहे हैं।

कुल मिलाकर हिन्दी का भविष्य अत्यंत उज्ज्वल है। आज जबकि प्रधानमंत्री, जो स्वयं एक गैर-हिन्दी भाषी व्यक्ति हैं, देश-विदेश में इसी भाषा में बात करते हैं तब हिन्दी, भारत की न केवल आधिकारिक भाषा के रूप में विश्व के पटल पर प्रतिष्ठा पाती है बल्कि भारत देश भी प्रतिष्ठित होता है। आने वाले दिनों में जब हिन्दी में उपलब्ध ज्ञान सामग्रियों की उपलब्धता सुलभ होगी, यह तय मानिए कि हिन्दी में पढ़ने लिखने वालों की संख्या बढ़ेगी।

अँग्रेजी का संबंध कहीं न कहीं हमारे मानसिक एवं बौद्धिक गुलामी से भी है। जो जनसामान्य की भाषा है उससे अलग बोलना हमें एक एलिट क्लास प्रदान करता है और ऐसा सिर्फ इसी देश में नहीं होता है, बल्कि विश्व में अन्य स्थानों में भी होता है। आपको यह जानकार आश्चर्य होगा कि जिस अँग्रेजी की हम बात कर रहे हैं उसी अँग्रेजी के घर इंग्लैंड में वहाँ के राज परिवार की भाषा अँग्रेजी नहीं बल्कि फ्रेंच है। राज परिवार के सदस्य आपस की बात-चीत में फ्रेंच का इस्तेमाल करते हैं न कि अँग्रेजी का।

धीरे-धीरे हम यह भी उम्मीद कर सकते हैं कि हम मानसिक एवं बौद्धिक गुलामी से भी मुक्त होंगे एवं निज देश, निज भाषा एवं निज धर्म पर गर्व करना प्रारम्भ कर देंगे। बस आवश्यकता है कि हम भाषा को लेकर हठधर्मी न बने साथ ही साथ हम दूसरी भाषाओं का भी आदर करें, सम्मान करें। भाषा न किसी धर्म की होती है और न किसी क्षेत्र की, भाषा बोलने वाले की होती है। मूल रूप से तो भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम भर ही है तो जिस भी तरीके से हिन्दी भाषा में अभिव्यक्ति हो रही है, उसका स्वागत किया जाना चाहिए एवं नए शब्दों, नई प्रवृतियों का भी अभिनंदन किया जाना चाहिए। भाषा अपना स्वरूप स्वयं ही गढ़ लेती है, जिस प्रकार बहती हुई नदी हमेशा अपनी दशा एवं दिशा स्वयं तय कर लेती है।

आइये हम अपनी भाषा पर गर्व करें। हिन्दी एक ऐसी भाषा जो सर्वाधिक वैज्ञानिक है, जिसमें हम जो बोलते हैं वही लिखते हैं। अगर लिंग की परेशानी को छोड़ दें तो हिन्दी सीखना एवं उसमें बात करना किसी भी अन्य भाषा-भाषी के लिए सर्वाधिक आसान है और शायद यही कारण है कि आप या तो सुदूर दक्षिण जाएँ या पूर्व आपको हिन्दी समझने वाले लोग मिल जाएंगे। जो हिन्दी लिखना पढ़ना नहीं भी जानते हैं वे भी हिन्दी बोल समझ लेते हैं, यह इस भाषा की विशेषता ही है। हिन्दी एक प्राणवान भाषा है। हजारों साल में अनेक बोलियों एवं भाषाओं से प्राण तत्व ग्रहण करके इसने अपने आपको चिरंजीवी बनाया है। इसलिए आने वाले हजारों सालों तक हिन्दी की पौध लहलहाती रहेगी।

-नीरज नीर
बुद्ध विहार पोस्ट ऑफिस-अशोक नगर, राँची
झारखंड-834002

प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा में भारतीय भाषाओं के समक्ष चुनौतियाँ

संतोष बंसल

इस विषय पर चर्चा से पूर्व हमें वर्तमान समय को आंकना होगा, क्योंकि कोरोना काल में 'तालाबंदी' एवं संक्रमण के खतरे के कारण सभी शिक्षण संस्थान अभी खुले नहीं हैं। जहाँ क्षणिक गतिविधियां सिर्फ इंटरनेट के माध्यम से 'वर्चुअल' हो गयी हैं, वहीं बच्चे स्कूल के परिवेश से अलग- थलग रहकर घर के कंप्यूटर पर 'वीडियोज' के माध्यम से पढ़ाई कर रहा है। यह सबके लिए बदली हुई दुनिया है, जिसमें बच्चों को घर के भीतर रोक कर उन की शैक्षणिक और शारीरिक गतिविधियों को समेट दिया है। बच्चे एक चाक पाबंद माहौल में जी रहे हैं, जिसमें उन्हें फिर से माता-पिता का साथ और बुजुर्गों का साया प्राप्त हो रहा है। लेकिन दूसरी तरफ असुरक्षा और भय के साथ यह सवाल भी उठ रहा है कि कब तक शिक्षण संस्थान में जाये बिना शिक्षा ठीक से प्राप्त हो सकेगी ? जब भी शिक्षा की बात आयी है, उसके साथ स्कूल का नाम जुड़ा होता है। फिर चाहे वह प्राथमिक शिक्षा हो या माध्यमिक ? स्कूल और उसके 'पाठ्यक्रम' के बिना पढ़ाई की कल्पना भी नहीं की जा सकती और शिक्षक की अनुपस्थिति में विषय-वस्तु ज्ञान असंभव है। ऐसी स्थितियों में भारतीय भाषाओं की चुनौतियां अब और अधिक बढ़ गयी हैं, क्योंकि घर में बच्चा अपनी बोली बोलना सीखता है लेकिन चार दीवारी से बाहर निकल कर ही उसकी भाषा का सम्पूर्ण विकास होता है। वैसे भी 'स्मार्ट फोन' के इस तकनीकी दौर में आपसी संवाद बहुत कम हो गया है, आजकल के बच्चे नए लोगों से मिलने में हिचकते हैं या बहुत कम शब्दों में बातचीत करते हैं। अगर 'सोशल मीडिया' से सम्बन्धित कोई पोस्ट देखें तो उसमें घर के जितने सदस्य हैं, उन सबको अपने फोन में ही व्यस्त देखा जा सकता है। सबके एक साथ रहते हुए या बैठे हुए भी उनकी आपस में बात नहीं होती, जिससे संवादहीनता की स्थिति पैदा हो गयी है। स्मार्टफोन ने बच्चों को अकेला और अपने आस-पास में एक-दूसरे से अजनबी बना दिया है, रही-सही कसर स्मार्ट फोन पर खेले जाने वाले गेम्स ने पूरी कर दी है । जिससे वास्तविकता से दूर बच्चे आभासी दुनिया में जी रहें हैं।

इन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में हम प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा में भारतीय भाषाओं की चुनौतियों के विषय में मंथन करेंगे। लेकिन इस से भी पूर्व बच्चे के शैशव काल में उसके बोलने की शुरुआत की जांच करनी होगी, जिसका असर उसकी आगामी शिक्षा पर पड़ता है। स्कूल जाने से पूर्व बच्चे के समक्ष सबसे बड़ी समस्या तो यही होती है कि वह घर में अपनी मातृभाषा किस से और कितनी मात्रा में सीख पाया है ? क्योंकि स्कूली शिक्षा लगभग छह वर्ष की उम्र से शुरू होती है और शुरूआती भाषा और समझ बूझ, बच्चे की देखभाल और पोषण के साथ घर से बेहतर कहीं नहीं हो सकती। अनुसंधान से यह स्पष्ट हुआ है कि तीन महीने के बच्चे की 'सोशल स्माइल' को देख जब माँ या अन्य अभिभावक अपनी प्रतिक्रिया देता है, उसे सुनकर ही उसकी संवाद चेतना विकसित होती है। अगर कोई बच्चा ऐसे वातावरण में पलता है, जिसमें उसे पर्याप्त प्रतिक्रिया नहीं मिलती, तो उसका भाषिक संज्ञान उतना विकसित नहीं होता। वह वर्ण या शब्दों को उतनी स्पष्टता से बोल नहीं पाता, जितना कि कोई बच्चा संयुक्त परिवार में रहकर तेजी से बोलना सीखता है। यही कारण है कि कोई बच्चा जल्द बोलना सीख लेता है और कोई थोड़ा देर से। इसका मुख्य वैज्ञानिक कारण यह है कि जन्म के साथ ही दिमाग में 'न्यूरल कनेक्शंस' यानी नसों का जुड़ाव उन्मुक्त भाव से होना शुरू हो जाता है, जो तीन वर्ष की उम्र आते-आते अपने शिखर पर होता है। मगर इसके साथ-साथ छंटाई भी चलती रहती है, जिस कारण यह जुड़ाव कहीं अधिक कुशल बन जाता है। इसीलिए छह वर्ष की उम्र तक बच्चे का दिमाग लगभग वयस्क जैसा हो जाता है। भविष्य में सीखने की क्षमता इन्हीं शुरुआती वर्षों में विकसित ज्ञान सम्बन्धी दिमागी क्षमता व अपनी मूल भाषा पर निर्भर करती है।

(लेख-आखिर किस उम्र से बच्चा स्कूल जाना शुरू करें 'श्री अनुराग बहर, सीईओ, अजीम प्रेमजी फाउंडेशन')

मसला सिर्फ भाषागत क्षमता का नहीं है ? बच्चा जब थोड़ा बड़ा तथा परिपक्व हो जाता है, तभी वह बाहरी दुनिया से स्वतंत्र रूप से जुड़ता है और अपनी स्कूली शिक्षा शुरू कर सकता है। संक्षेप में कहें तो सफल शिक्षा, काम और जीवन की नींव अमूमन छह वर्ष की उम्र तक तैयार हो जाती है, मगर सामाजिक विकास ने खेल का सारा नियम बदल दिया है। संयुक्त परिवार का टूटना, माता-पिता दोनों का कामकाजी होना एवं बच्चे के भविष्य को लेकर अति महत्वकांक्षी बनना, इन कारणों से मध्य वर्ग ने बच्चों को प्री-स्कूल में भेजना शुरू कर दिया। आज मध्य वर्ग का प्रत्येक बच्चा तीन वर्ष की आयु में ही स्कूल जाने लगा है और नौकरी पेशा माँ को तो छह या आठ माह के शिशु को 'क्रेच' में छोड़ना पड़ता है। जहाँ प्रत्येक शिशु को कितना लाड-दुलार या वाणी का स्वर सुनने को मिलता है, यह कहा नहीं जा सकता ? लेकिन यह सिद्ध हो चुका है कि माँ का शिशु के समक्ष लोरी गायन या उससे संवाद, उसकी भावनात्मक सुरक्षा के साथ भाषा सम्प्रेषण के महत्वपूर्ण माध्यम हैं। इसीलिए परिवार के साथ अब ऐसे शिक्षा कार्यक्रम की जरुरत बन गयी है, जो शिशु के शुरुआती बचपन के लिए हो। एक सूचना के अनुसार भारत में इसे लेकर सार्वजनिक योजना चल रही है- 'समेकित बाल विकास योजना' (आई.सी.डी.एस.) और जो देश की 13 लाख आंगनबाड़ियाँ चला रही हैं। यह एक समग्र कार्यक्रम है, जिसमें

पोषण, स्वास्थ्य व बच्चे की देखभाल के साथ शिक्षा भी तीन साल की उम्र से शुरू हो जाती है। इसके साथ निजी प्री-स्कूल संसाधन के मामले में आंगनबाड़ी से बेहतर हैं, लेकिन बाल्यावस्था की शुरुआती शिक्षा को कानून अधिकार बनाया जाना चाहिए । क्योंकि शुरुआती वर्षों में हर बच्चे को सुरक्षित और संवेदनशील माहौल मिलना चाहिए, जहाँ भाषा, कला, खेल व सहभागिता से भरा-पूरा माहौल हो। क्योंकि जब बच्चे एक बेहतर माहौल में परवरिश के ढेर सारे अनुभव हासिल करते हैं, तो वे शारीरिक, मानसिक और सामाजिक रूप से विकसित होते हैं और इस का प्रभाव उनकी बोलने और बताने की भाषा क्षमता पर पड़ता है।

शैशवास्था के बाद जब हम प्राइमरी शिक्षा के दौरान भाषा की चुनौती की बात करते हैं तो शिक्षक के समक्ष यह दोहरे स्तर पर खड़ी होती है। एक तो यह कि जिस मातृभाषा का स्वर और शब्द बच्चा घर में सीखता आया है, उसके विपरीत स्कूल में सीधे अँग्रजी के अल्फाबेट्स से उसका परिचय करवाया जाता है। बहुत से स्कूलों में राष्ट्रभाषा हिन्दी तो क्या, बच्चों को उनकी मातृभाषा का ककहरा भी नहीं सिखाया जाता। बहुत से बच्चों को हिन्दी या अपनी मातृभाषा में गिनती नहीं आती और अपनी भाषाओं के स्वर-व्यंजन की पहचान भी नहीं होती। बच्चे 'वन, टू, थ्री काउंटिंग' सीखते हैं, एक, दो, तीन की गिनती नहीं, जिसका नतीजा यह होता है घर में जो बोली या मातृभाषा बोली जा रही होती है, उसकी शिक्षा या ज्ञान से वह वंचित रह जाता है और जो बच्चा अपनी मातृ भाषा से परिचित न होगा, उसका अपनी कला, संस्कृति और साहित्य, समाज से संपर्क टूट-छूट जाएगा। वह अपनी बोली अथवा भाषा में ठीक से बात कर पायेगा और न ही पुस्तकों में कथा-कहानियाँ और गीत-कवितायें पढ़ पायेगा। जिससे भाषा का अवमूल्यन तो होता ही है, उस भाषा का अपने ही क्षेत्र में अपने लोगों के बीच प्रचार -प्रसार भी रुक जाता है। जबकि मीडिया और सिनेमा उसी स्थानीय भाषा का प्रयोग करती है और इनके माध्यम से जब बच्चा इसे सुनता या देखता है तो उसका भाषा ज्ञान आधा-अधूरा तथा अधकचरा हो जाता है। बच्चों ने अपनी ही मातृभाषा का मानक एवं शुद्ध व्याकरणिक स्वरूप का पाठ नहीं सीखा हुआ होता, जबकि मातृभाषा का ज्ञान प्राथमिक पाठशाला में ही जरूरी है। विदेशी भाषा या अँग्रेजी भाषा वह तीसरी या चौथी कक्षा में भी प्राप्त कर सकता है, लेकिन हमारी शिक्षा प्रणाली में। एप्पल, एप्पल माने सेब सिखाया जाता है अर्थात विदेशी भाषा सीखते हुए अपनी मातृभाषा की शब्दावली सीखना, इससे बड़ी चुनौती किसी भी भाषा के अस्तित्व के लिए क्या होगी ? फिर बच्चा अपनी भाषा को सीखने या पढ़ने को प्राथमिकता कैसे देगा ? कोई भी यह नहीं पढ़ाता, 'आ' से आम, आम का मतलब 'मैंगो' । यानी क्रम मातृभाषा से राष्ट्रभाषा की ओर नहीं, बल्कि विदेशी भाषा से मातृभाषा की तरफ उल्टा है।

इसका सबसे बड़ा नुकसान यह होता है कि वह अपनी मातृभाषा की उस शब्दावली से अपरिचित रह जाता है, जो उसके साथ जुड़े रिश्तों और नातों के सम्बोधन के लिए अहम् हैं। जैसे सभी भारतीय भाषाओं में हिन्दी भाषा की तरह दादा-दादी, नाना-नानी, ताऊ-ताई, चाचा-चाची, बुआ-फूफा, मामा-मामी, मौसा-मौसी, भाई-भाभी, बहन-बहनोई, सखा-सहेली सभी रिश्तों के लिए अलग सम्बोधन है, जबकि अंग्रेजी भाषा में अधिकतर रिश्तों के लिए अंकल और आंटी ही है। इसी तरह हिन्दी में प्रेम को प्रगट करने के लिए भी सबंधों के अनुसार अक्षर विद्यमान है, जैसे ममता, स्नेह, प्रीती, प्यार, अनुराग, इश्क, मुहब्बत इत्यादि। जबकि इंग्लिश में केवल एक शब्द 'लव' है, जो सभी नातों में सुविधानुसार प्रयुक्त किया जाता है। प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर बच्चे को जो वर्णमाला के अनुसार वस्तुओं की पहचान करवाई जाती है, वह शुरू से ही दो भाषाओं में सिखाने से बच्चा भ्रमित हो मिश्रित भाषा बोलता है। आज हिन्दी बोलने वाले घरों में भी बच्चा 'कुत्ता' नहीं कहता, वह 'डॉग' या 'डॉगी' पुकारता है। यही हाल फलों, सब्जियों, रंगों और वस्तुओं के नाम लेने में है, जिनको बच्चे अपनी भाषा के नामों से नहीं पुकारते। वह हवाई जहाज को 'एरोप्लेन' और जहाज को 'शिप' कहकर ही बात करता है, जिससे उस भाषा के शब्द भण्डार पिछड़ गए हैं और उनके भाषा कोश दरकिनार कर दिए गए हैं। इससे हमारी भाषाओं के सारे शब्दों से नयी पीढ़ी वाकिफ नहीं होगी, दूसरे एकल परिवार होने से ये प्रयोग में न होने से विलुप्त हो जाएंगे। इनके साथ लोक भाषा और स्थानीय बोलियों के बहुत से दैनिक दिनचर्या के शब्द, वाक्य, लोकोक्ति, मुहावरे जो किसी भी भाषा की जान होते हैं, वे खत्म होते जाएंगे। अपनी भाषा से दूर होकर बच्चे अपनी संस्कृति को न जानकर अपनी वास्तविक पहचान खो देंगे और विदेशी भाषा पढ़-लिख कर चाहे रोजगार अच्छा मिल जाए, लेकिन वह साहित्य जो वह पढ़ेंगे, वह उनके समाज का दर्पण न होगा। अंग्रेजी भाषा के लबादे के नीचे भारतीय भाषाओं के लिए यह सबसे बड़ी चुनौती है, जिसे महात्मा गाँधी जी ने इंगित किया था।

वैसे माध्यमिक स्तर पर शिक्षा में भाषिक चुनौतियां अधिक व्याप्त हैं क्योंकि सोशल मीडिया ने जो आधी-अधूरी, सही-गलत सूचनाएं इस उम्र के बच्चों को दी हैं, उन्होंने भटकाने का काम किया है। किशोरावस्था की जिस आयु में उन्हें जीवन की सच्चाई से रूबरू करवाना चाहिए, उन्हें अपनी पसंद और लक्ष्य की तरफ बढ़ने के लिए 'मार्गदर्शन' करना चाहिए, वह सब डगमग हो रहा है। जिस स्कूल में उन्हें शिक्षक द्वारा सब कुछ सिखाया जाता है, मर्यादा का पाठ पढ़ाया जाता है, भाषा और आचरण में शालीनता की शिक्षा दी जाती है, वह सब धीरे-धीरे समाप्त हो रही हैं। बल्कि आज उनकी एक अलग दुनिया बस रही है और सीखने की कच्ची किशोर उम्र में वे रातों-रात युवा बन रहे हैं। स्कूलों में सहपाठियों के संग, सीधे अध्यापिका के संपर्क से उनमें जो सहयोग और सामुदायिक भावना पनपती थी, उसका लोप होता जा रहा है। सोशल मीडिया की आभासी दुनिया ने उनके आचार-विचार और भाषा को सतही कर

दिया है, जिसमें सजीवता तथा संवेदना मरती जा रही है। भाषाओं के लिए यह बहुत बड़ा खतरा है, जिस के कारण रचनात्मकता और सृजनात्मकता मिटने का अंदेशा है। क्योंकि संचार माध्यम उनके कल्पनालोक का अतिक्रमण कर उनमें नकारात्मकता भरने का जो काम कर रहे हैं, वह सच्चाई न तो इस शिक्षा व्यवस्था के नीति नियंता समझ रहे हैं, न ही अभिभावक। हालांकि भविष्य की वैश्विक जरूरतों को ध्यान में रखते हुए बाल मनोविज्ञान को समझना बड़ी जरुरत है। अंततः बच्चों के सृजनात्मक व्यक्तित्व के निर्माण में शिक्षा, शिक्षक और अभिभावक ही सहायक साबित होंगे। जरुरत इस बात की है कि परिवार बच्चों की बातों को ठीक से सुनं। उनसे लगातार बातचीत का सिलसिला बनाये रखें। किताबों की दुनिया के साथ-साथ उनका परिचय उनके चारों ओर की उस दुनियावी जिंदगी से भी होना चाहिए, जिससे वे निरंतर दूर होते जा रहें हैं। (लेख- 'बाजारवाद ने बच्चों का बचपन भी छीना, बचपना भी', श्री विशेष गुप्ता, अध्यक्ष, बाल अधिकार संरक्षण आयोग, उत्तर प्रदेश)

जिस बातचीत या संवाद अथवा वार्तालाप की हम चर्चा कर रहें हैं, उसमें मूल आधार हमारी अपनी भाषा ही होती है। हम अपना सुख-दुःख या चिंता अपनी भाषा में ही बांटना चाहते हैं, लेकिन इस भागीदारी के लिए परिवार और स्कूल जैसी संस्थाएं लगातार कमजोर पड़ती जा रहीं हैं। इसका कारण अभिभावकों का बच्चों के लिए वक्त कम होना तो है, साथ ही 'टीचर्स-स्टूडेंट्स' के मध्य संवाद की कमी भी है। अब अध्यापिकाओं और बच्चों का वह भाषिक पारस्परिक परिचय नहीं है, जिससे अपनापन और आत्मीयता जुड़ती थी। अब स्कूलों का दायरा व्यवसायिक होकर केवल परीक्षा पास करने तक सीमित हो गया है, बच्चों का अपने टीचर्स से भाषा या अल्फाज का आपसी संपर्क सूत्र टूट गया है। इस कारण इन दिनों बच्चे अपने समय का बहुत बड़ा हिस्सा 'इंटरनेट सर्फिंग' करते हुए बिताते हैं। वे 'रियल' से ज्यादा 'वर्चुअल लाइफ' को जीते हैं, जहाँ भावनाएं शब्दों से ज्यादा 'इमोजी' पर टिकी हैं। यह 'इमोजी कल्चर' सभी भाषाओं के लिए खतरा है, क्योंकि ये भाषा को जीवन से विस्थापित या धकेलने का काम कर रहें हैं। अब यहाँ 'लाइक' और 'कमेंट' के लिए 'रेडीमेड ऑप्शन' हाजिर है जो बच्चों की व्यक्तिगत अभिव्यक्ति को, उसके शब्दों के चुनाव को, उसके अपने मंतव्य को अपनी भाषा में जाहिर करने की मंशा को खत्म कर रहा है। उसे बस इतनी स्वतंत्रता है कि स्क्रीन पर स्थित को वह पसंद आने पर 'शेयर' कर दे, लेकिन 'ट्रोलिंग' या 'हैकिंग' होने पर उसे क्या करना है ? यह नहीं पता। वह बड़ों को अपनी मुश्किलें बता नहीं पाता या बताने से बचता है, तब भाषा के उपयोग की चुनौती पैदा होती है। दूसरी तरफ साइबर बुलिंग में उसके सामने जो भाषा उपस्थित होती है, उससे वह नितांत अनजान होता है। बच्चों-किशोरों के प्रति इन अपराधों में तरह-तरह की गाली-गलौज वाली भाषा, धमकी आदि शामिल है। कई बार हंसी-मजाक में जो चीजे बच्चे पोस्ट करते हैं, उन्हें बदल दिया जाता है और फिर धमकी दी जाती है कि इस बात व फोटो को 'एडल्ट साइट्स' पर डाल दिया जाएगा। (लेख- 'साइबर अपराधियों से बच्चों को बचाने की खातिर', क्षमा शर्मा, वरिष्ठ पत्रकार)

इस प्रकार भारतीय भाषाओं को जो चुनौतियां आज से डेढ़ सौ-दो सौ वर्ष लार्ड मैकाले ने शिक्षा के लिए अंग्रेजी भाषा माध्यम तय करके खड़ी की थीं और जिसका भुगतान हमने उनका गुलाम बन कर किया एवं जिसकी कीमत हम आज तक चुका रहें हैं, उससे भी अधिक चुनौतियां या खतरा अब हमारी बोलियों और क्षेत्रीय भाषाओं के लिए पैदा हो गया है। हमारी भाषा वह चाहे कोई भी क्यों न हो ? उसमें अजीब सा बदलाव या नयापन दिख रहा है। जिसे राष्ट्रभाषा हिन्दी के लिए तो लक्षित किया ही जा रहा है, किन्तु यह परिवर्तन 'ग्लोब्लाइजेशन' एवं तेज रफ्तार वाली जीवन पद्धति से सभी भारतीय भाषाओं में भी कमोबेश हुआ है। सोशल मीडिया की तकनीकी शब्दावली के प्रवेश के साथ फेसबुक, यू ट्यूब, इंस्टग्राम, ब्लॉग और टिक-टॉक के प्रयोग ने भाषाओं का रंग-ढंग ही बदल दिया है। जिसमें स्वाभविक हाव-भाव और साज-सज्जा नहीं बल्कि बनावटी, दिखावटी और सजावटी कृत्रिमता है। इंटरनेट पर बहुत सी 'एप्स' के प्रयोक्ताओं के लिए आभासी छवि ही दरअसल वास्तविकता है, वे दिन रात अपनी इस आभासी पहचान को बनाने, बनाये रखने के छद्म में ही लीन हैं। नयी पीढ़ी जिसे हम 'मोबाइल जेनेरशन' या 'टेकसेवी' कहकर बुला रहें हैं, उनकी अपनी प्रादेशिक या भाषिक पहचान नजर नहीं आती। अगर दिखती है तो वैश्वीकरण के दौर में प्रतिस्पर्धा की दौड़ और टॉप पर पहुँचने की उनकी ख्वाईश, जिसमें भाषा लड़खड़ा रही होती है, चेहरे पर हवाइयां उड़ रही होती हैं। जहाँ उनका अपना निजी कुछ नहीं होता, न व्यक्तित्व, न भाषा, न संस्कृति। अब सबने एक जैसा स्टाइल धारण कर लिया है, जहाँ सब एक जैसे दीखते हैं। इस प्रकार विभिन्नता और विविधता वाले भारत की बहुरंगी संस्कृति और भाषाओं के समक्ष चुपचाप से एक बड़ी शून्यता खड़ी हो गयी है। जिस भारतीय एकात्मकता की छत्रछाया में ये भाषाएँ फल-फूल रही थी और साहित्य तथा अनुवाद के माध्यम से एक-दूसरे से सम्पर्क साध रही थी, वह एकाएक दरकिनार कर दिया गया है। केवल कला और साहित्य के चिंतक ही भाषा और संस्कृति के संरक्षण और संचयन की बात उठा रहें हैं और इसके लिए निरंतर प्रयासरत हैं।

अंततः अब हमें ही बच्चों के असंगत व्यवहार और भाषाओं की दुर्दशा के लिए उनके बचपन को निश्चित दिशा देने वाली परिवार और स्कूल जैसी संस्थाओं की भूमिका टटोलनी होगी। क्योंकि शिक्षा और उसकी संपर्क सूत्र भाषा की धूरी बच्चें ही हैं और वे ही इससे प्रभावित हो रहे हैं। यह एक कटु सत्य है कि सोशल

शेष पृष्ठ संख्या 48 पर

महात्मा गाँधी का राष्ट्रभाषा-दर्शन

सुजाता भट्टाचार्या

'नमस्ते' भारत की संस्कृति का परिचायक है जिसे विश्व के बड़े-बड़े देशों ने माना है। यह मुख से बोलकर तथा अपने दोनों हाथों को मिलाकर किया गया अभिवादन का ऐसा तरीका है जिसमें बिना दूसरों को छुए अपनी शक्ति को संचित कर अपना शुभ भाव दूसरों तक पहुंचाया जाता है। यह शब्द 'नमस्ते' हिन्दी भाषा का एक महत्वपूर्ण शब्द है जो भारतीय संस्कृति को दर्शाता है। हम कह सकते हैं कि मातृभाषा प्रत्येक व्यक्ति, समाज व संस्कृति की पहचान होती है। इसी के माध्यम से किसी भी राष्ट्र की संस्कृति जीवंत रूप में रहती है। भाषा मानव मन के उद्‌गारों के संप्रेषण का एक सार्थक माध्यम है। इस कड़ी में यह बात जानने योग्य है कि प्रत्येक राष्ट्र की मातृभाषा उसके निवासियों के मन में उसकी संस्कृति की संवाहक है। भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति है। इसके प्रमाण मोहनजोदड़ो की खुदाई में सबके समक्ष आ चुके हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि मिश्र के मेसोपोटामिया की तरह भारतीय संस्कृति भी सबसे पुरानी सभ्यताओं में से एक है।

हजारों वर्षों के विभिन्न प्राकृतिक व सामाजिक परिवर्तनों के बाद भी यह संस्कृति जस की तस बनी हुई है। यहाँ एक ओर सिंधु घाटी की सभ्यता, आर्यों, द्रविड़ों की गौरवशाली परंपरा रही वहीं बौद्ध धर्म के साथ स्वर्ण युग की शुरुआत। बार-बार विदेशी आक्रमणों व उपनिवेशवाद के परिणामस्वरूप देश में विभिन्न धाराओं, प्रणालियों का समावेश यथा-जैन धर्म, सिख धर्म, मुस्लिम धर्म तथा ईसाई धर्म का समागम हुआ है। इन सबके बावजूद यह संस्कृति अपनी एक अलग पहचान लिए खड़ी है मानो इसे अमरता का वरदान मिला हो। इस समृद्ध संस्कृति के कारण ही भारत महान कहलाता है। यहाँ की तपोभूमियों, गुरुकुलों की प्रथा आदि का एक अलग वैशिष्ट्य रहा है। गुरुकुल प्रणाली में तो शिष्य व गुरु में किसी प्रकार का भेदाभेद नहीं था। गुरु निष्पक्षता से राजा और रंक को प्रशिक्षित करते थे। इसी गुरु-शिष्य प्रणाली की उपमा पूरा संसार देता है।

भारत में बोली जाने वाली भाषाओं की संख्या अपरिमित है। भाषाओं की इस अपरिमित संख्या ने यहाँ की संस्कृति और पारंपरिक विविधता को बढ़ावा दिया है। यूं तो भारत की भाषाओं को मुख्य रूप से दो प्रमुख भाषा परिवार में विभक्त किया गया है।प्रथम भारतीय आर्य भाषाएँ और द्वितीय द्रविड़ भाषाएँ। पहले भाग में मुख्यत भारत के उत्तरी-पश्चिमी, मध्य और पूर्वी क्षेत्रों की उपभाषाएँ आती हैं। दूसरे भाग में दक्षिणी भाग में बोली जाने वाली भाषाएँ । इस देश की प्रमुख भाषा संस्कृत है जिसे अन्य भाषाओं की जननी कहा जाता है। भारतीय भाषाओं का मूल स्रोत होने के कारण इन्हें अत्यंत वैज्ञानिक भाषाओं के वर्ग में रखा जाता है। फ्लोरिडा स्थित विश्व विद्यालय में हुए अनुसंधानों से यह प्रमाणित हुआ है कि संस्कृत व हिन्दी की लिपि देवनागरी के कारण तथा इसे बोलते समय जीभ के सभी स्नायुओं का उपयोग होता है, रक्त संचार बढ़ता है, मस्तिष्क शांत होकर बेहतर कार्य करता है जिससे बीमारियों से बचाव होता है और अगर रोग हो जाए तो भी रोगी की रक्षा होती है।नेशनल ब्रेन सेंटर में हुए अनुसंधान से यह प्रमाणित हुआ है कि भारतीय भाषाएँ मस्तिष्क के दोनों गोलार्ध को सक्रिय करती है जबकि अंग्रेजी से केवल बायां भाग सक्रिय होता है जो तर्क, गणित, विचारशीलता को बढ़ावा देता है और मस्तिष्क का दायां भाग आत्मीयता, संवेदना, कला, दया, ममता, करूणा, संगीत, काव्य जैसे गुणों का द्योतक है अर्थात् ये मनुष्य में मानवीय गुणों का संचार करते हैं। अत: हम देखते हैं कि भारतीय भाषाओं के उच्चारण व भाषण से मानव का संपूर्ण विकास होता है। वह न केवल गणित, तर्क आदि में निपुण होता है वरन उसमें दूसरों के प्रति करूणा के भाव भी जागते हैं। भाषा के माध्यम से ही संस्कृति, विचार और जीवन-पद्धति का संवहन व संप्रेषण होता है। वहीं यदि किसी देश की भाषा नष्ट हो जाती है तो वहाँ की संस्कृति भी समाप्त हो जाती है।

विश्व में जापान, जर्मनी आदि अनेक छोटे-छोटे देश हैं जो अपनी मातृभाषा में ही शिक्षा प्राप्त करते हैं। वहाँ विदेशी भाषाओं का स्थान नगण्य है फिर भी वे तकनीकी क्षेत्र में विश्व के सिरमौर बन बैठे हैं। यहाँ ज्ञातव्य है कि जब एक बच्चा अपनी मातृभाषा में शिक्षा ग्रहण करता है तो वह अधिक उन्नति करता है। उसकी मातृभाषा को वह जन्म से सुनता है तत्पश्चात् उसे बोलकर लिखना-पढ़ना सीखता है। यही भाषा उसके हृदय में रची बसी है, इसके लिए उसे अलग से प्रयास करने की आवश्यकता नहीं होती है।

भाषा और संस्कृति एक-दूसरे से इस प्रकार जुड़े हैं कि हमारी भाषा में ही हमारे देश के महत्वपूर्ण ग्रंथों को लिखा गया, यथा- रामायण, उपनिषद, चतुर्वेद, महाभारत, पुराण आदि। यदि प्रत्येक मानव अपने देश के इन महान ग्रंथों का अध्ययन करें तो उसे जीवन जीने का ज्ञान मिलेगा। यही भारतीय संस्कृति है जो हजारों वर्षों पहले लिखी गई परंतु आज के संदर्भ में भी सभी बातों को पूरी तरह सत्य सिद्ध करती है।

अनेक महान विभूतियों ने भी संस्कृति का भाषा के साथ संबंध बताते हुए भी अनेक तथ्य दिए। डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम की मान्यता थी कि मातृभाषा में शिक्षा का परिणाम सर्वोत्तम होता है क्योंकि इससे उस इंसान की संस्कृति की छाप मिलती है। यह भी माना जाता है कि संप्रेषण की भाषा सदा चितंन-मनन की भाषा होनी चाहिए। यदि व्यक्ति अपनी-अपनी भाषा में चिंतन करेगा तो वह जिज्ञासु वह आत्मविश्वासी बनेगा और सदा अपनी संस्कृति के उत्थान व उसके विकास की बात सोचेगा।

हमारी भारतीय संस्कृति हमें पेड़-पौधों की रक्षा, पर्वतों का बचाव, पर्यावरण की रक्षा करना सिखाती है जो हमारी भारतीय भाषाओं में बताई गई है, आज भारतीय अपनी भाषा को ही भूलते जा रहें हैं और विदेशी भाषाओं को आत्मसात कर रहे हैं। जिससे इस देश से परोपकार,

उदारता, सहिष्णुता आदि गुणों का लोप हो रहा है। आज के छात्र अंग्रेजी माध्यम से पढ़कर तार्किक रूप से सोचते हैं और बुढ़ापे में माता-पिता को कुछ धन देकर सोचते हैं कि उन्होंने अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर लिया है। जबकि इस देश की संस्कृति उन्हें श्रवण कुमार की कथा बताती है जिसने माता-पिता की सेवा में अपने प्राण तक त्याग दिए। यहाँ फिर वही बात आती है, अपनी भाषा से दूर होकर इंसान न केवल अपनी संस्कृति से दूर हो रहा है वरन् अपनी उन्नति के मार्ग भी बंद कर रहा है।

आज जो आए दिन नित नए अपराधों की सूचना आती है जैसे किसी ने आपस में गाड़ी के टकराने से दूसरे पर गोली चला दी, छात्रों में आए अनुशासनहीनता, अपने संस्कारों को अंधविश्वास बताना और उन सबसे भयावह परिवार में रिश्तों का टूटना। यह सब अपनी भाषा से दूर होकर अपनी संस्कृति को न जानने के कारण हो रहा है।

संयुक्त परिवार भारत की संस्कृति की बड़ी देन हैं जो आज समाप्त हो रही है, जहाँ आज भी परिवार एक साथ रह रहें हैं वहाँ आज की पीढ़ी ने अपने तर्क से काम लिया है तात्पर्य यह कि आधुनिक युग में पति-पत्नी दोनों नौकरी करते हैं और उनके बच्चों की देखभाल के लिए वे अपने माता-पिता को साथ रखते हैं। यहाँ तक कि आज भारतीय परिवारों में तलाक की संख्या भी हद से ज्यादा बढ़ गई हैं। इन सबके पीछे अपनी भाषा का ह्रास ही है। इस तरह भारतीय संस्कृति धीरे-धीरे खत्म हो रही हैं।

देश में आए सांस्कृतिक बदलाव भी अपनी भाषा के लोप के कारण ही है। ओरेगान के भाषा वैज्ञानिक डेविड हैरिसन और ग्रेग एंडरसन के अनुसार जब लोग अपने समाज की भाषा में बात करना बंद कर देते हैं, तब उनके मस्तिष्क की अनेक सकारात्मक क्षमताओं का शमन हो जाता है। इस बात का प्रमाण भारतीय परिवेश में स्पष्ट दिखाई देता है, जहाँ अपनी भाषा के ज्ञान के अभाव में लोग अपनी पौराणिक गौरव गाथाओं को नहीं जान पाते हैं और अपनी संस्कृति के विपरीत आचरण करते हैं। एक तथ्य यह भी है कि जिस 'ओउम' शब्द की महत्ता को विश्व के वैज्ञानिकों ने स्वीकारा हो और जिसके उच्चारण से बड़ी-बड़ी बीमारियों को ठीक करने का दावा किया है वहाँ भारतीय नागरिक उससे कोसों दूर चला गया है।

इतना ही नहीं अब लगता है प्रत्येक व्यक्ति दूसरों में कमी ढूंढ़ रहा है जबकि हमारी संस्कृति के अनुसार-

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा ना मिलया कोई,
जो मन खोजा आपना, मुझसे बुरा ना कोई।।

अर्थात् स्वयं की कमियों को ढूंढ़कर उन्हें सुधारने की बात करते हैं। अपनी भाषा के अभाव में भारतीय रीति के अनुसार अभिवादन के रूप में 'राम-राम' अथवा 'राधे-राधे' का उच्चारण कर अपने मन को निर्मल करने की परंपरा को त्याग कर आज भारतीय समाज ने 'गुडमर्निंग' को अपना लिया है। इतना ही नहीं मुसीबत के समय भी 'हे भगवान' आदि के उच्चारण से मन को बल मिलता है और आई मुसीबत का सामना करने की क्षमता मिलती है। परन्तु आज के भारतीय उस समय ऐसा न करके पश्चिमी सभ्यता के अनुसार अभद्र शब्दों का प्रयोग करते हैं।

हमारे देश की संस्कृति कश्मीर से कन्याकुमारी तक भाषाई अंतर के कारण अलग-अलग प्रतीत होती है लेकिन यहाँ के मनीषियों के विचार एक हैं जो देश को एकता के सूत्र में बांधते हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम अपनी भाषा को बचाएँ क्योंकि उसी के माध्यम से हमारा परिचय अपनी आत्मा अर्थात् संस्कृति से होगा। हमारी संस्कृति तो इतनी उच्च विचारों से परिपूर्ण है जो समस्त संसार को एक दृष्टि से देखते हुए 'बसुधैव कुटुम्बकम' तथा 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामय' की अतुलनीय संस्कृति, व्यक्ति विशेष की नहीं समिष्ट की भलाई की सीख देती है।

-सुजाता भट्टाचार्य
डी.-268, गली नं-54
महावीर इनक्लेव पार्ट-3, नई दिल्ली

पृष्ठ संख्या 46 का शेष

मीडिया ने भाषाओं के प्रारूप को बिगाड़ा है एवं अब कोविड-19 के वायरस के प्रकोप से बचने के लिए इंटरनेट पर शिक्षा ने भाषाओं की संवेदना को मार दिया है। यह केवल शुष्क ज्ञान देना मात्र रह गया है, जिसमें किताबों के अक्षरों की सौंधी महक भी नहीं है और न ही उनकी भाषाओं की प्यारी छुअन। ऐसे में प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा संस्थानों के सम्मुख भाषाओं को बचाने के जिम्मेदारी दुगुनी आन पड़ी है, जिसमें उन्हें एक तरफ आधुनिक सिस्टम से कदम मिला कर चलना है तो अपनी परम्पराओं को भी बचाना है। इसके लिए भाषाओं और संस्कृतियों का ज्ञान सरल, सुगम और रोचक तरीके से प्रेषित करना होगा। मुझे अपने ऋषि-मुनियों द्वारा कथाओं और गाथाओं के द्वारा गूढ़-गंभीर ज्ञान को लोक रंजक और लोक मंगल बनाने की बात अब समझ आ रही है। क्योंकि बहुत सी लोक भाषाएँ और बोलियाँ जहाँ लुप्त हो चुकी हैं। वहीं बाजारवाद और सोशल मीडिया ने कई भाषाओं को हाशिये पर ला दिया है। इसीलिए प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा में भारतीय भाषाओं के समक्ष के अब ज्यादा चुनौतियाँ और कठिनाईयाँ हैं, जिन्हें शिक्षक वर्ग एवं बुद्धिजीवी वर्ग बच्चों के भाषा शिक्षण में सेतु या पुल का कार्य कर सकता है। क्योंकि हिन्दी भूषण शिवपूजन सहाय ने लिखा है, 'राष्ट्र की जनता ही राष्ट्र की आत्मा है और राष्ट्र की भाषा ही राष्ट्र की वाणी है और राष्ट्र की भाषा ही राष्ट्र की संस्कृति की रीढ़ है।' यही कथन भारतीय भाषाओं पर भी समान रूप से लागू होता है, जिसके तदनन्तर सभी भारतीय भाषाएँ और बोलियाँ अपने-अपने क्षेत्र की संस्कृति और साहित्य की नींव हैं। जिन्हें शिक्षा के दौरान ही स्थापित किया जा सकता है और फिर उसी पर पूरे ढाँचे को निर्मित किया जाता है, क्योंकि भाषाओं को हाशिये पर रखकर राष्ट्र निर्माण संभव नहीं।

-संतोष बंसल
ए-1/7, मियांवाली नगर, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-87

'भाषा में उलझता बालमन और युवा-वर्ग'

गरिमा संजय

भारत ऐसा देश है जहाँ एक बड़ा क्षेत्र हिन्दी-भाषी है और साथ ही, कोई प्रान्त मराठी भाषी है, कोई गुजराती, पंजाबी, बांग्ला या तमिल, तेलुगु, उड़िया या मलयाली और कन्नड़ भाषी। यहाँ कोई ऐसा प्रान्त नहीं जिसे अंग्रेजी-भाषी प्रान्त कहा जा सके। अरुणाचल एवं नागालैंड की आधिकारिक भाषा अंग्रेजी जरूर रखी गई है, लेकिन वहाँ भी स्थानीय, बोलचाल की भाषा अंग्रेजी नहीं। यह विडंबना ही है कि इसके बावजूद, हमारे यहाँ व्यापक तौर पर अंग्रेजी को ही शिक्षा के माध्यम के रूप में स्वीकारा गया है। मानसिकता कुछ ऐसी कि अंग्रेजी माध्यम में पढ़ने वाले बच्चों को ही प्रगतिशील और आधुनिक माना जाता है। कुछ सरकारी स्कूलों, कॉलेज आदि में हिन्दी को शिक्षा का माध्यम जरूर बनाया गया है, लेकिन कहीं न कहीं इन बच्चों को जिन्दगी के विभिन्न अवसरों पर तरह-तरह की हीन-भावना से गुजरना पड़ता है। ऐसा नहीं कि अंग्रेजी का कोई विरोध है। भाषा का विरोध तो हो ही नहीं सकता। विरोध है, तो उस भाषा को अनावश्यक रूप से थोपने का, जिसकी अनिवार्यता विद्यार्थियों से उनकी सहजता छीन लेती है। यह ज्ञात तथ्य है कि किसी भी विषय को सरलता, सहजता से समझने के लिए अपनी भाषा से बेहतर कोई और माध्यम हो ही नहीं सकता। कल्पना करें उस अवस्था की जब इंग्लैण्ड या फ्रांस के विद्यार्थियों को विज्ञान या सामाजिक शास्त्र की पढ़ाई हिन्दी में करनी पड़े? सुनने में हास्यास्पद लगता है, लेकिन भारतीय बच्चों को अंग्रेजी भाषा में शिक्षा देना ऐसी ही स्थिति है... और यह स्थिति हास्यास्पद नहीं, बल्कि काफी कष्टकारी होती है, जो अक्सर अनेक बच्चों से उनका आत्मविश्वास तक छीन लेती है। फिर भी, आमतौर पर शिक्षा के माध्यम के रूप में न हिन्दी पसंद की जाती है, और न ही कोई प्रांतीय भाषाएँ। बल्कि, कहा जा सकता है कि अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा अभिभावकों के सामने एक विज्ञापन, प्रचार के साधन के रूप में परोसी जाती है। चक्र कुछ यों है- माता-पिता अंग्रेजी-माध्यम से शिक्षा दिलवाने में गर्व महसूस करते हैं, तो स्कूल-कॉलेज यही पेश करते हैं, उच्च शिक्षा और व्यावसायिक जगत में अंग्रेजी की ही माँग होती है, इसलिए माता-पिता यही माँग दोहराते हैं, और स्कूल यही पेश करते हैं। जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते हैं, उनकी जिन्दगी में अंग्रेजी का उपयोग जरूरी होता जाता है, बातचीत और व्यवहार की दुनिया में भी और कामकाज, व्यवसाय में भी।

यह दबाव अभिभावकों का है या कामकाज का, स्कूलों का या फिर सरकार का, शिक्षा का माध्यम व्यापक तौर पर अंग्रेजी ही होता जा रहा है। हिन्दी माध्यम की शिक्षा को निम्न स्तर का माना जाता है। यद्यपि सरकारी स्कूलों में बहुत सीमा तक हिन्दी माध्यम से शिक्षा दी जा रही है। लेकिन अधिकतर पब्लिक अथवा निजी स्कूलों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी ही होता है। स्वाभाविक ही था कि अंग्रेजी हुकूमत ने शिक्षा को अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप ढालने की कोशिश की। अंग्रेजों से आजादी पाने के कुछ समय तक शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी बने रहना कुछ तर्क संगत भी लगता है क्योंकि आजादी के तुरंत बाद शिक्षा पद्धति में परिवर्तन करना आसान नहीं रहा होगा। लेकिन जैसे-जैसे हमारा देश वयस्क हो रहा था, हम अपने देश की शिक्षा-व्यवस्था में अपने देश-वासियों की सुविधा और आवश्यकताओं को देखते हुए बदलाव कर सकते थे। देश के अनुरूप अपनी शिक्षा-पद्धतियाँ बना सकते थे। लेकिन ग्लोबलाइजेशन की लालसा ने ऐसा होने न दिया। अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा देने के पक्षधर तर्क देते हैं कि अगर दुनिया के साथ कदम मिलाकर चलना है तो अंग्रेजी माध्यम से ही शिक्षा देनी जरूरी है। उनका कहना है, दुनिया भर में सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा अंग्रेजी में अगर शिक्षा नहीं होगी तो हमारे युवा दुनिया की अपेक्षा पीछे रह जायेंगे। मानो, अपने विषय पर मजबूत हों या न हों, यह मायने नहीं रखता, लेकिन आपकी अंग्रेजी फर्राटेदार ही होनी चाहिए। व्यावसायिक दुनिया का निर्माण कुछ इस तरह हो गया है कि ऊपरी तौर पर सब कुछ अंग्रेजी भाषा में ही होता नजर आता है। पूरा कॉर्पोरेट जगत अंग्रेजी-मय ही है। संभवत: यह एक बड़ा कारण है कि परिवार, अभिभावक, समाज और शैक्षिक संस्थान सभी का रुझान अंग्रेजी की ओर अधिक रहता है। यह तो किसी ने विचारने की कोशिश ही न की कि अपनी भाषा में अपने विषयों को समझना बच्चों के लिए आसान होगा, जबकि दूसरी भाषा में समझने के लिए उन्हें दोहरी मेहनत करनी पड़ती है। पहले अंग्रेजी को समझना पड़ता है और फिर वह विषय... और कई बार बहुत से बच्चे भाषा के इस चक्र में ऐसे फंसते हैं कि असल विषय से भटक ही जाते हैं। जो विषय अपनी भाषा में वे अच्छी तरह समझ सकते थे और संभव है कि उसमें नए-नए प्रयोग भी कर सकते थे, उस विषय से दूर, वे बस नई भाषा को समझने में लगे रह जाते हैं। अगर दूसरे देशों की बात की जाए, तो चीन में अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा जरूरी नहीं, जापान में जापानी भाषा में पढ़ाई होती है और जर्मनी में जर्मन भाषा में, फ्रांस में फ्रांसीसी भाषा में... और, ऐसा कौन कह सकता है कि इन देशों के युवा दुनिया में किसी से पीछे रह गए? इसके विपरीत दो या तीन भाषाओं में उलझे हमारे बच्चों के लिए शिक्षा के सामान्य विषयों को जटिल बना दिया। हम बड़ों को भी अपनी भाषा में कोई विषय जितनी जल्दी और आसानी से समझ में आता है, दूसरी भाषा में उसे समझने में उतनी ही अधिक कठिनाई होती है।

अपनी भाषा में शिक्षा न लेने के कारण किसी भी विषय को पढ़ने, समझने से पहले बच्चों के लिए जरूरी होता है कि वे

अंग्रेजी भाषा को सीखें और पढ़ें। यह मजबूरी हमने खुद अपने बच्चों पर थोपी है। जरूरी नहीं कि हर बच्चा अंग्रेजी भाषा को आसानी से समझ पाता हो। ऐसे भी बच्चे होते हैं जो किसी तरह के विज्ञान में या गणित या भूगोल में बहुत काबिल होंगे, लेकिन अंग्रेजी समझने, पढ़ने या लिखने में उन्हें कठिनाई होती होगी! अब कठिनाई चाहे जितनी भी हो, बच्चा उस विषय में अपनी काबीलियत तभी साबित कर सकेगा, जब वह अंग्रेजी भाषा को पढ़ने, लिखने या बोलने के काबिल बनेगा। यदि ऐसे बच्चों को उनकी ही भाषा में शिक्षा दी जाती, तो उन्हें इस तरह की परीक्षा न देनी पड़ती। भाषा की कठिनाई में उलझे बिना वह बच्चा सीधे केवल अपनी शिक्षा से जुड़े विषय पर ध्यान दे पाता। एक और तर्क दिया जाता है कि उच्च शिक्षा के लिए पाठ्य-सामग्री हिन्दी में उपलब्ध नहीं होती, इसलिए बच्चों को अंग्रेजी माध्यम में ही पढ़ाना चाहिए। यदि यह मान भी लें कि उच्च शिक्षा की पाठ्य सामग्री हिन्दी में नहीं भी मिलती होगी, तब भी कम से कम सेकेंडरी और माध्यमिक स्तर तक के बच्चों को तो हिन्दी माध्यम में पढ़ाने की कोशिश की जा सकती है। जब बच्चे अपनी भाषा में विषय को समझने लगेंगे, तब यदि उच्च-शिक्षा की वयस्क उम्र में अंग्रेजी माध्यम में पढ़ना भी पड़े तो बच्चों के सामने अधिक कठिनाई नहीं आती। रही बात हिन्दी में पाठ्य-पुस्तक उपलब्ध कराने की, तो यह काम भी मुश्किल तो नहीं। आज के तकनीकी युग में अनुवाद की एक पूरी दुनिया ही बन चुकी है।

गूगल से लेकर तकनीकी पढ़ाई और फिल्मी-मनोरंजन तक, सभी कुछ एक भाषा से दूसरी में अनुवाद करके पेश किया जा रहा है। फिर, पाठ्य-पुस्तकों का अनुवाद क्यों नहीं हो सकता? और, सच तो यह है कि पाठ्य-पुस्तकों का अनुवाद हिन्दी में करवाना भी कोई नई बात नहीं। बात करीब चालीस साल पहले की होगी। मैं अभी स्कूल में ही थी। मेरी दीदी विज्ञान की छात्रा थीं। भले ही आगे चलकर मैंने विज्ञान के विषयों से शिक्षा नहीं ली, लेकिन मेरा बालक मन दीदी की विज्ञान की किताबों में बहुत रमता था। कारण था, उन किताबों में बने सुंदर-सुंदर रेखाचित्र... भौतिकी की पुस्तक में उपकरणों के, जीव विज्ञान की पुस्तकों में पशु-पक्षियों के और वनस्पति-विज्ञान की पुस्तकों में फूल-पत्तियों, पेड़-पौधों के सुंदर रेखाचित्र मेरे बालमन को बहुत लुभाते। फिर, दीदी स्वयं भी अपनी लैब फाइल बनाती और उनमें भी इसी तरह के सुंदर लुभावने रेखाचित्र बनाती... उनकी पुस्तक-पुस्तिकाओं की स्मृतियाँ आज भी मेरे मानस-पटल पर स्पष्ट अंकित हैं। उनमें केवल रेखाचित्र ही मेरा ध्यान आकर्षित नहीं करते थे, बल्कि हिन्दी और अंग्रेजी के समावेश पर मेरा खास ध्यान जाता। दीदी हिन्दी माध्यम से पढ़ रहीं थीं। इसलिए सारी जानकारी हिन्दी में दी गई होती थी, लेकिन तकनीकी शब्दों को हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में दिया जाता था। कहने की आवश्यकता नहीं, एक पूरी पीढ़ी इस तरह से पढ़ाई कर रही थी, जिनमें से अनेक आज डॉक्टर, इंजीनियर, आईएस अधिकारी, प्रोफेसर और यहाँ तक कि कॉर्पोरेट जगत के शीर्ष पदों पर भी आसीन हैं। ऐसे में आज, जब भी यह विवाद खड़ा होता है कि उच्च-शिक्षा की पुस्तकें हिन्दी या प्रांतीय भाषाओं में उपलब्ध नहीं हो सकतीं, इसीलिए विद्यार्थियों को अंग्रेजी में 'अपडेट' जानकारी दी जाती है, उस समय मेरी आँखों के सामने बचपन में देखी हुई यही पुस्तकें आती हैं और मन अनायास यही सवाल करता है... यदि उस समय हिन्दी माध्यम में शिक्षा देने के लिए सार्थक तरीके निकाल लिए गए थे, तो अब वे तरीके गुम क्यों हो गए? तकनीकी तौर पर पिछड़े उस युग में भी यदि हिन्दी माध्यम से पढ़ने वाले बच्चों को अच्छी पाठ्य-पुस्तकें मिल पाती थीं, तो आज ऐसा संभव कैसे नहीं हो सकता? जबकि आज तो, जैसा मैंने पहले कहा, अनुवाद का युग चल रहा है। हर विषय की सामग्री हर माध्यम से हिन्दी में ही नहीं दुनिया की लगभग हर भाषा में उपलब्ध कराई जा रही है।

कंप्यूटर और इंटरनेट की दुनिया में अनुवाद के सॉफ्टवेयर और टूल बनाए जा रहे हैं ताकि अनुवादक अपने काम तेजी से कर सकें। हर भाषा में अनुवाद करने वाली "अनुवाद-एजेंसी" बनी हुई हैं। जिसमें अनेक अनुवादक अलग-अलग विषयों के अनुवाद अलग-अलग भाषाओं में करते हैं। आई.टी. जैसे तेजी से बदलते क्षेत्र की विषय-वस्तु, पाठ्य-सामग्री तक का अनुवाद आजकल उतनी ही तेजी से किया जा रहा है, जितनी तेजी से उनमें विकास होते हैं। फिर हम विज्ञान, सामाजिक-विज्ञान आदि के विषयों का अनुवाद उपलब्ध कैसे नहीं करवा सकते? आखिर, कोई भी पुस्तक कम से कम एक सत्र के लिए तो स्कूल/कॉलेज में चलती ही है, बीच सत्र में तो कोई पुस्तक बदलते नहीं। समस्या ऐसी नहीं जिसका समाधान न हो, बस समाधान के लिए सार्थक प्रयास करना आवश्यक है। ज्ञातव्य है, भाषाओं में उलझने के बाद भी हमारे बहुत से विद्यार्थी विश्व-स्तर का प्रदर्शन कर पाते हैं। यहीं, यदि सही दिशा में प्रयास करके विद्यार्थियों को उनकी भाषा में ही शिक्षा देने में किया जा सके, तो उन बच्चों की प्रतिभाएँ भी मुखरित होकर सामने आ सकेंगी जो अंग्रेजी के बोझ तले घुट जाती हैं। ''

-गरिमा संजय

श्री राजकुमार श्रेष्ठ, संयुक्त संपादक, हिन्दुस्तानी भाषा भारती, अकादमी के नवीन प्रकाशनों के साथ ।

भारतीय भाषा सेवियों, शिक्षकों, शोधार्थियों एवं पत्रकारों के लिए अनमोल पुस्तकें

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी

तीनों पुस्तकों का कुल मूल्य 500/- (डाक खर्च अलग)

सम्पादक

सुधाकर पाठक
अध्यक्ष, हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी

अपनी प्रति आज ही बुक करायें।

सम्पर्क करें :
राजकुमार श्रेष्ठ
मोबाइल : 8802683040
E-mail : hindustanibhashabharati@gmail.com

प्रकाशन

भाषा-गत-अनागत
भारतीय भाषाओं पर केन्द्रित तीस विद्वानों के साक्षात्कारों का संग्रह

भारतीय भाषाएँ : चिंता से चिंतन तक
भारतीय भाषाओं, उप भाषाओं, बोलियों, लोक साहित्य एवं संस्कृति पर केन्द्रित लेखों का संकलन

हिन्दी : विमर्श के विविध आयाम
हिन्दी की वर्तमान स्थिति, भविष्य की चुनौतियों एवं संभावनाओं पर केन्द्रित लेखों का संकलन

B.K. SETHI
+91-9654274072
+91-8745920612

NationsBook .in

Online Book Store

www.nationsbook.in info.nationsbook@gmail.com https://nationsbook.blogspot.com

अब आप www.nationsbook.in पर कम्प्यूटर या लैपटॉप से ऑनलाइन पुस्तकों का ऑर्डर करें और घर बैठे पुस्तकों को प्राप्त करें।

Categories are available

* Spritual * Hindi Literature * Poems * Ghazals * Novels
* Science and Technicals * Text Books * English Literature * Art Books
* English Books * Exams Entrance Books * Computers Books * Media Books Etc.

Office : 7/253, Ground Floor, Sant Nirankari Colony, Delhi-110009

RNI No. : DELHIN/2017/73904

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी

(भारतीय भाषाओं के प्रचार-प्रसार और संवर्धन को समर्पित संस्था)

पंजीकृत कार्यालय : 3675, राजा पार्क, रानी बाग, दिल्ली-110034

दूरभाष : 09873556781, 09968097816

E-mail : info@hindustanibhashaakadami.com
hindustanibhashabharati@gmail.com
Website : www.hindustanibhashaakadami.com